श्रीकृष्ण-सन्देश
वर्ष : ८
अंक : १२
विनाशाय च दुष्कृताम्

निगमामृत

संज्ञान-सूक्त : ऋग्वेद १०.१९१

३.

समानो मन्त्रः समितिः समानी समानं मनः सहचित्तमेषाम् ।
समानं मन्त्रमभिमन्त्रये वः समानेन वो हविषा जुहोमि ॥

मन्त्र एक-सा हो इन सबका, होवे प्राप्ति समान,
अन्तःकरण समान सभीके, सम-विचार, सम-ज्ञान ।
तुम सबके हित में अभिमन्त्रित करता मन्त्र समान,
सम हविष्यसे लिए तुम्हारे करता आहुति-दान ॥

४.

समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः ।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति ॥

तुम सबकी चेष्टा समान हो निश्चय एक समान,
हृदय तुम्हारे एक-तुल्य हों हो न विषमता-भान ।
एक-सदृश ही हों तुम सबके अन्तःकरण उदार,
हो सुन्दर सहवास तुम्हारा, ज्यों समता साकार ॥
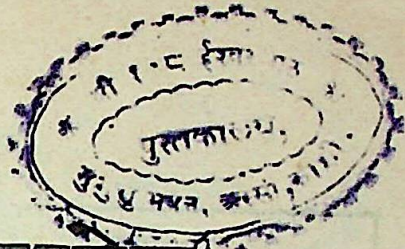
श्रीकृष्ण-सन्देश

धर्म, अध्यात्म, साहित्य एवं संस्कृति-प्रधान मासिक

प्रवर्तक

ब्रह्मलीन श्री जुगलकिशोर बिरला

सम्मानित

● सम्पादक-मण्डल

आचार्य सीताराम चतुर्वेदी

विश्वम्भरनाथ द्विवेदी

डॉ० भगवान् सहाय पचौरी

● सम्पादक

पाण्डेय रामनारायणदत्त शास्त्री 'राम'

गोविन्द नरहरि वैजापुरकर

संख्या ●

वर्ष : ८, अङ्क : १२

जुलाई, १९७३

श्रीकृष्ण-संवत् : ५१९९

शुल्क ●

वार्षिक : ७ रु०

आजीवन : १५१ रु०

प्रबन्ध-सम्पादक

देवधर शर्मा

: प्रकाशक :

श्रीकृष्ण-जन्मस्थान-सेवासंघ, मथुरा

दूरभाष : ३३८

प्रेमी पाठकों एवं लेखकोंसे !

भगवान् श्री केशवदेवकी असीम अनुकम्पासे 'श्रीकृष्ण-सन्देश'का आठवाँ वर्ष इस अंकसे पूरा हो रहा है। अगले अंकसे यह पत्र नवें वर्षमें प्रवेश करेगा। नवें वर्षका प्रथम अङ्क विशेषाङ्क होगा और उसमें भगवान् श्रीकृष्णके पुरुषार्थवादी विचार एवं चरित्र दिये जायँगे। एतदर्थ देशके गण्य-मान्य विद्वानों एवं सन्त-महन्तोंके लेख आ रहे हैं। 'श्रीकृष्ण-सन्देश'में इस वर्ष भी अन्य वर्षोंके समान आध्यात्मिक चिन्तनके गम्भीर निबन्ध, प्रेम-भक्तिके उद्भावक सरस प्रबन्ध, धर्म, ईश्वर तथा सदाचारके प्रति आस्था बढ़ानेवाले विचार, विभिन्न विद्वानोंके गम्भीर चिन्तन, साहित्यिक चर्चा, सामाजिक समुत्थानके लिए दिशा-निर्देशन आदि बराबर दिये गये हैं। अध्यात्म-शास्त्र, गीता, धर्मशास्त्र, नीतिशास्त्र इतिहास-पुराणोंपर आधृत उत्तमोत्तम विचार-सामग्री देनेकी भी सतत चेष्टा की गयी है। विचारोत्तेजक लेख, कहानी तथा कविता आदिके द्वारा भी पाठकोंके मनोरंजनके साथ-साथ उनमें सद्धर्म, सदाचार, आध्यात्मिक चेतना तथा भगवन्निष्ठा जाग्रत् करनेका प्रयास सतत हुआ है। विशाल हिन्दू-धर्मके अन्तर्गत विभिन्न सम्प्रदायोंमें जो लोकमंगलकारी महापुरुष हो गये हैं, उनके प्रेरणाप्रद जीवनवृत्त तथा सदुपदेश आदि भी समय-समयपर देनेकी चेष्टा की गयी है। श्री अरविन्द-अंक और तुलसी मानस चतुःशती अङ्क इस वर्षके प्रमुख अङ्क रहे हैं।

'श्रीकृष्ण-सन्देश' अपने उद्देश्यके अनुरूप विचार देनेके लिए सदा यत्नशील रहा है और आगे भी रहेगा। हम पाठक-पाठिकाओंसे विनम्र अनुरोध करते हैं कि वे अपने इस पत्रको सर्वविध सहयोग देकर सबल बनाते और अपनाते रहें। यथासंभव चेष्टा करके 'श्रीकृष्ण-सन्देश'के नये-नये ग्राहक भी बनायें। इस अंकके साथ आपका पुराना वार्षिक-शुल्क पूरा हो जाता है। अब नये वर्षके लिए अग्रिम शुल्क भेजकर विशेषाङ्की अपनी-अपनी प्रति सुरक्षित करा लें। आशा है, सदाकी भाँति इस वर्ष भी ग्राहक महानुभाव अपना पूर्ण सद्भाव, सहयोग देकर 'श्रीकृष्ण सन्देश'को अनुगृहीत एवं गौर-वान्वित करेंगे।

लेखक महानुभावोंसे भी विनम्र अनुरोध है कि वे अपने उत्तमोत्तम लेख यथा-संभव शीघ्र प्रेषित करें।

—सम्पादक

अनुक्रम

मासिक व्रत-पर्व एवं महोत्सव

[संवत् २०३० श्रावण कृष्ण प्रतिपद् सोमवार १६-७-'७३ से श्रावण शुक्ल पूर्णिमा सोमवार १४-८-'७३ तक]

जुलाई : १९७३

दिनांक	वार	व्रतपर्व
१६	सोमवार	श्रावण सोमवार-व्रत।
१८	बुधवार	संकष्टी गणेशचतुर्थी-व्रत।
२३	सोमवार	श्रावण सोमवार-व्रत।
२६	गुरुवार	कामदा एकादशी-व्रत, सबके लिए।
२७	शुक्रवार	प्रदोष-व्रत।
२८	शनिवार	मासशिवरात्रि-व्रत।
२९	रविवार	स्नान, दान एवं श्राद्धकी अमावास्या।
३०	सोमवार	श्रावण शुक्ल प्रतिपद्, सोमवार-व्रत।

अगस्त : १९७३

दिनांक	वार	व्रतपर्व
१	बुधवार	लोकमान्य तिलक-निर्वाण तिथि।
२	गुरुवार	वैनायकी गणेशचतुर्थी-व्रत।
३	शुक्रवार	नागपञ्चमी।
५	रविवार	गोस्वामी तुलसीदास-जयन्ती, चतुश्शती।
६	सोमवार	श्रावण सोमवार-व्रत।
९	गुरुवार	पुत्रदा एकादशी-व्रत, सबके लिए।
११	शनिवार	शनि-प्रदोष-व्रत।
१३	सोमवार	श्रावणी, रक्षाबन्धन, सोमवार-व्रत।
१४	मंगलवार	स्नान-दानकी पूर्णिमा।
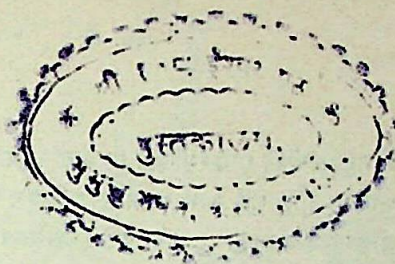
श्रीकृष्ण-जन्मस्थान :

प्रत्यक्ष-दर्शियोंके भावभीने शब्द-सुमन

★

पूज्यपाद जगद्गुरु श्री शंकराचार्य काञ्चीपुरम्-कामकोटिपीठाधीश्वर श्रीकृष्ण-जन्मस्थान पधारे। भागवत-भवनका निर्माण-कार्य देखकर आपको बहुत ही सन्तोष हुआ। उपर्युक्त कार्य शीघ्रातिशीघ्र अच्छी तरह सम्पन्न होनेके लिए आपने आशीर्वाद भी प्रदान किये।

ए० एस० भानुपंथ
प्रबन्धक : श्री कांची-कामकोटि-शंकराचार्य-स्वामिमठ
कांचीपुरम्–२ (तमिलनाडु)

श्रीकृष्ण-जन्मस्थान समस्त विश्वकी विभूति है। मनुष्य श्रीकृष्णसे ही अपनेको खोज पाता है। यह स्थान गुम हो गया, यह हमारी कमजोरी थी। इसका जीर्णोद्धार होना ही चाहिए। मगर इसका भव्य स्वरूप ऐसा बने कि सारे जगत्को मोह ले और भूले हुएको मार्ग दिखाये।

कामाख्याप्रसाद तिवारी
अध्यक्ष : नेशनल टेक्नीकल कारपोरेशन,
सूर्यकिरण बिल्डिंग, नयी दिल्ली

प्रभु-चरणोंमें सात वर्ष बाद आनेका सुअवसर प्राप्त हुआ। संसारलीला इतना बांधे रहती है कि आध्यात्मिक अथवा भौतिक दोनों आकांक्षाएँ अपूर्ण ही रह जाती हैं। जीव चाहता कुछ है और लीला कुछ अन्य होती है। अपूर्ण मानव अपूर्ण ही रह जाता है, यदि कृपा न मिले।

प्रभुकी प्राकटच-स्थलीमें भवन तो सुन्दर बन रहे हैं। इनसे उतने ही सुन्दर विचारोंका प्रचार हो, तो इतनी बड़ी धनराशिका सदुपयोग हो जायगा। प्रभु-इच्छा ही पूर्ण होगी। विवेक ही मूल्यवान् है और इसकी वृद्धि ही चरम लक्ष्य है।

कालीशंकर
आई० पी० एस०,
डी० आई० जी०, आगरा

अपने पूर्व-महापुरुषोंकी पुण्य-स्मृतिको सुरक्षित रखकर ही हम अपने राष्ट्रकी स्थितिको समझ सकेंगे.। भगवान् श्रीकृष्णके जन्म-स्थानपर पहुँचकर इस राष्ट्रिय-चितिकी अनुभूति होना स्वाभाविक है। श्रीकृष्ण-जन्म-स्थान ट्रस्टने इस पुण्यस्थलपर भिन्न-भिन्न तरहके आयोजन कर और प्राचीन वस्तुओंको सुरक्षित रखकर राष्ट्र को महती सेवा की है। हमारा पुनीत कर्तव्य है कि इस संस्थानको सब प्रकारसे सहयोग दें। संस्थानकी व्यवस्था अच्छी है।

कौशलकिशोर
संगठन-मंत्री : उ० प्र० जनसंघ,
विधायक-निवास लखनऊ

भगवान् श्रीकृष्णकी पावन जन्म-स्थलीके दर्शन करनेका मुझे सौभाग्य प्राप्त हुआ। गीता-गायक एवं राष्ट्र और समाजकी प्रेरणाके प्रतीक भगवान् श्रीकृष्णकी यह जन्म-भूमि राष्ट्रिय तीर्थ है। हृदयके भावको शब्दोंमें इससे अधिक क्या व्यक्त किया जा सकता है ?

चन्द्रप्रभाष शेखर
उपमंत्री : विभाग, वित्त मध्य-प्रदेश

प्रभुके दर्शन कर महान् श्रद्धा तथा आनन्दका अनुभव हुआ। ईश्वर सबको सद्बुद्धि दें, जिससे समस्त समाज तथा देशका कल्याण हो।

कृष्णदत्त दीक्षित
पुलिस-अधीक्षक, मथुरा।

It is a great work done by the Trust in re-establishing this highly sacred place.

D. V. NARSINHAM
Minister of Education
& Social Welfare,
New Delhi.

Sri Krishna Janmasthan Seva Sangh is doing meritorious service in resurrecting and building up the holy place of Lord Krishna's Birth. Their plans to build Bhagwat Bhawan is laudable and I have no doubt with the zeal and devotion of the office bearers of the Seva Sangh and the Co-operation of the public, it will grow into a great centre of religion, spiritual pursuit and holy learning.

I. J. NAIDU
Addl. Secretary
Govt. of India,
New-Delhi.
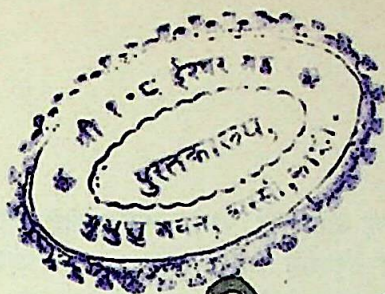
21-4-73

वर्ष : ८] मथुरा : जुलाई, १९७२ [अङ्क : १२

ज्ञानकी प्राप्ति और उसका महत्त्व

जिस ज्ञानकी इतनी महत्ता बतायी गयी है, उसे प्राप्त कैसे किया जाय ? यह विचारणीय प्रश्न है । जो वस्तु जहां है, वहींसे उपलब्ध होगी । जलके लिए जलाशयके पास जाना होगा । तत्त्वज्ञानका उपदेश तत्त्वदर्शी महात्मा ही दे सकते हैं । बिना गुरुके ज्ञान नहीं होता; अतः तुम्हें ज्ञान-प्राप्तिके लिए तत्त्वदर्शी गुरुकी खोज करनी पड़ेगी । यदि वे मिल भी गये तो अपने-आप उपदेशामृतकी वर्षा नहीं करने लगेंगे, उनके अन्तःकरणमें उपदेश देनेकी प्रेरणा जगानी होगो । इसके लिए तुम्हें तीन काम करने पड़ेंगे—प्रणिपात, परिप्रश्न और सेवा । अपने आन्तरिक विनयका परिचय देनेके लिए तुम्हें उन महात्मा जनोंके चरणोंमें साष्टाङ्ग प्रणाम करना होगा । स्मरण रहे, यह काम अभिनय या दम्भसे नहीं हो सकता । इसके लिए तुम्हें अपने मन और बुद्धिकी वृत्तियोंको भी विनयशील बनाना होगा । तुम्हारा यह प्रणिपात तुम्हारे भीतरकी उपदेशामृत पानकी पिपासाको प्रकठ करेगा और इससे ज्ञानी गुरुके अन्तःकरणमें विनीत शिष्यको उपदेश देनेकी प्रेरणा जाग्रत् होगी । प्रणिपात करके चुप बैठनेसे भी काम नहीं चलेगा, तुम्हें उन महात्मा जनोंके समक्ष अपने प्रश्न प्रस्तुत करने होंगे । निश्छल भावसे अपनो उन शङ्काओंको रखना होगा, जिनके समाधानके लिए तुम्हारा हृदय आकुल हो । इसके अतिरिक्त तुम्हें उन महात्मा गुरुजनोंको

सुदीर्घकाल तक सेवा करनी होगी। यह काम राह चलते प्रश्न करनेसे नहीं हो सकता। दीर्घकालिक सेवा और सत्संगके द्वारा तत्त्वदर्शी महात्माको संतुष्ट करना पड़ेगा; उन्हें यह अनुभव कराना होगा कि तुम्हारे हृदयमें ज्ञानोपदेश पानेकी सच्ची भूख है; तभी वे आर्द्र होकर तुम्हें सदुपदेश देगें।

उस उपदेशसे तुम्हें वह तत्त्वज्ञान उपलब्ध होगा, जिसे जानकर हृदयंगम करके तुम फिर कभी मोहके वशीभूत नहीं होओगे। इतना ही नहीं, उस ज्ञानका यह भी फल होगा कि तुम सम्पूर्ण भूतोंको निःशेषभावसे पहले तो अपने आपमें देखने लगोगे और फिर अपनेको मुझसे अभिन्न अनुभव करते हुए अखिल विश्व-ब्रह्माण्डको मुझ सच्चिदानन्दघन परमात्मामें स्थित समझोगे। यदि कहो इसका लाभ तो केवल पुण्यात्मा पुरुष ही ले सकते हैं; जो पहले बड़ा भारी पाप कर चुका हो, उसको तो यह ज्ञानोपदेश नहीं लगेगा तो ऐसी बात नहीं है। ज्ञानकी महिमा अपार है। यदि निश्छल भावसे महापुरुषोंकी शरण लेकर तुमने उनकी सहज कृपासे तत्त्व-ज्ञान प्राप्त कर लिया तो तुम्हारा बेड़ा पार है। मैं कहता हूं; मान लो, तुम समस्त पापाचारियोंसे भी बढ़कर पाप करनेवाले रहे हो तो भी तुम ज्ञानरूपा नौकाके द्वारा निश्चय ही समस्त पाप-सागरसे भली-भाँति तर जाओगे, पार हो जाओगे। ज्ञानका साधारण प्रभाव नहीं है। जैसे प्रज्वलित अग्नि सूखी समिधाओंको तत्काल जलाकर भस्मसात् कर देती है, उसी प्रकार ज्ञानकी अग्नि सम्पूर्ण कर्मराशिको तत्क्षण भस्म कर डालती है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि इस संसारमें ज्ञानके समान पवित्र करनेवाली दूसरी कोई वस्तु नहीं है। जो दीर्घकाल तक कर्मयोगका अनुष्ठान करके सिद्ध हो गया है—शुद्ध अन्तःकरणवाला बन गया है, वह पुरुष समयानुसार उक्त ज्ञानको स्वयं ही अपने आपमें पा लेता है। इसके लिए श्रद्धा और विश्वा स परम आवश्यक है। जो दृढ़ श्रद्धा और विश्वास लेकर साधनामें तत्पर रहता है और इन्द्रियोंको वशीभूत रखता है, वह अवश्य ज्ञान प्राप्त करता है। ज्ञान प्राप्त करके वह तत्काल परम-शान्तिको पा लेता है, देर नहीं लगती। ज्ञान-प्राप्ति और परम शान्तिकी उपलब्धि उसे एक साथ ही हो जाती है।

जो अज्ञानी है, श्रद्धासे रहित है और भीतर संशयसे भरा हुआ है, वह नष्टप्राय है, वह अवश्य ही परमार्थसे भ्रष्ट हो जाता है। जो संशयात्मा है, उस मनुष्यके लिए तो यह लोक भी सुलभ नहीं है; फिर परलोककी प्राप्ति और सुखकी उपलब्धि उसके लिए कैसे सम्भव हो सकती है ? जिसने कर्मयोगके द्वारा समस्त कर्मोको परमात्मार्पण कर दिया है, कर्म और उनके फल भगवान्‌के चरणोंमें चढ़ा दिया है और ज्ञानके द्वारा समस्त संशयोंका उच्छेद कर डाला है, ऐसे आत्मवान् (जितात्मा) पुरुषको कर्म नहीं बांधते हैं। अतः भारतीय वीर ! तुम अपने हृदयमें स्थित अज्ञान-जनित संशयको ज्ञान रूप खड्गके द्वारा काटकर समत्वरूप कर्मयोगमें स्थित हो जाओ और युद्ध-जैसे कर्मके लिए भी सदा उद्यत रहो।

(गीता चौथा अध्याय)

रस बरसाओ घनश्याम

रस बरसाओ घन श्याम! जगत्के ताप हरो।
उमगा दो पुण्य-पयोधि हमारे पाप हरो॥

बरती निदाघसे हो धरती यह शीतल,
जुड़वा दो भक्त-पपीहोंके फिर हीतल।
सब ओर नई छा जाय हरे हरियाली,
नव दल सुमनोंसे सजे विपिनकी डाली॥

मंगल रच मंगलधाम! अमंगल आप हरो।

नभ बीच घटा-सी नील छटा फिर छाये,
चपला-सा तन पर पीताम्बर फहराये।
आपादलम्बिनी हो विलसित वनमाला,
छवि इन्द्रधनुषकी छेड़े मुरलीवाला॥

धर रूप अमल अभिराम शोक दुःख शाप हरो।

श्यामा यमुनामें प्रीति-तरंग उठाओ,
मधुवनमें अद्भुत सुख सुषमा सरसाओ।
चातक भक्तोंका चालू हो प्रिय कीर्तन,
भावुक मोरोंका हो जोरोंसे नर्तन॥

मिटा ग्रीष्म-कंसके नाम अनीति अमाप हरो।

गीताका ज्ञानकर्मसमुच्चय और मुक्ति

डॉ० किशोरदास स्वामी एम. ए. पी. एच. डी.

★

(गतांकसे आगे)

वास्तवमें कर्म करनेका सबसे बड़ा अधिकारी ज्ञानीपुरुष ही होता है। क्योंकि यह संसार एक व्याधि या दुःख है। यदि आत्मज्ञानी इस दुःख-समुद्रसे पार उतर गया है, तो उसका कर्तव्य है कि वह शेष दुखी समाजके उद्धारके लिए पथ-प्रदर्शकका काम करे। नदीमें डूबनेवालेकी सहायता न कर, तटस्थ भावसे उसे देखनेवाले व्यक्तिको परम ज्ञानी नहीं कहा जा सकता। उसका जीवन एकांगी और स्वार्थ-परायण ही समझा जायगा और उसकी आनन्दकी वृत्ति शोषणात्मक वृत्ति ही समझी जायगी और यदि वह पर-उद्धार या परोपकारके लिए प्रवृत्त होता है, तो उसे कोई न कोई कर्म करना ही पड़ेगा। केवल वचन मात्रसे दूसरोंके दुःखोंका निराकरण कर देना सम्भव नहीं जान पड़ता। ज्ञानीके जीवनकी चरितार्थता इसीमें है कि वह समस्त मानव जाति अथवा प्राणियोंका हित-साधन करता हुआ, कर्म करता चले। ज्ञानी सांसारिक प्राणियोंके लिए ऐसी व्यवस्था उत्पन्न कर दे कि समस्त मानव समभावसे हिल-मिलकर रह सकें और वे अपने-अपने वर्णों के अनुसार कर्म करते हुए, आत्मोन्नतिके मार्गको अपनावें। परन्तु यदि ज्ञानी पुरुष उनके लिए पथ-प्रदर्शकका काम नहीं करता, तो ज्ञानयुक्त कर्मके अभाव में, इन्द्रियोंके वशीभूत हुआ मानव, शीघ्र ही विनष्ट हो जायेगा और सारा जगत् ही रसातलमें चला जायेगा। इसलिए परहितकी भावनाएँ मनमें रखकर, ज्ञानी पुरुषको यह स्मरण रखना चाहिए, कि संसारमें जो कुछ व्यवहार-कार्य मैं कर रहा हूँ वह सब ईश्वरसे संचालित है और उसे अनासक्त भावसे पूर्ण करनेके लिए ही ईश्वरने मुझे पैदा किया है।

ज्ञान हो जानेके पश्चात् विवेकी पुरुषको कर्म छोड़नेकी आवश्यकता नहीं है और न ही वह कर्मोंका परित्याग कर सकता है। जब सम्पूर्ण सृष्टि या कर्म परमात्मा के अधीन हैं, तो ईश्वरने जितना कर्म जिस प्राणीके लिए निर्धारित किया है, उतना उसे विवश होकर, साधिकार करना ही पड़ता है। देश, काल, अवस्था आदि परिस्थितियोंमें जन्म लेकर, प्राणी अपनी सामर्थ्यके अनुसार अनन्त कर्म करता है और संसारकी चरितार्थता इसीमें है कि मानव कर्म-परायण हो। यह संसार एक वृक्षके समान है और कर्मरूपी जलके सींचनेसे ही यह फलता-फूलता है। यदि मानव अपनेको परम ज्ञानी मानकर कर्म करना छोड़ दे, तो संसारका प्रवाह

ही लुप्त हो जायगा, परन्तु व्यावहारिक दृष्टिसे प्रत्येक बुद्धिजीवी व्यक्ति संसारकी सत्यताको स्वीकार करता ही है। भले ही कोई व्यक्ति अपने आपको ज्ञानी बतलाकर, आलस्यवश कर्म करना छोड़ दे, पर ईश्वर-निर्मित इस दृश्यमान सृष्टिका सर्वथा परित्याग नहीं कर सकता। भूमि पर उसे पाँव रखना ही पड़ेगा और वायु द्वारा सांस लेना ही पड़ेगा। भूमि, जल वायु और अग्नि ये सब ईश्वर संश्लिष्ट मायाके ही रूपान्तर हैं। बिना किसी प्रकारका कर्म हुए, मूल मायाका स्थूल रूपमें परिणत होना सम्भव नहीं है और उस मायाका नामरूपात्मक भूतोंमें परिणत हो जानेका ही नाम कर्म है। भगवान्‌ने गीतामें कहा है—**भूतभावोद्भवकरो विसर्गः कर्मसंज्ञितः** (गी० ८।३) अर्थात् पृथिव्यादि पांचों भूत और उनसे होनेवाले चराचरादि जितने भी पदार्थ हैं, उन्हें पैदा करनेवाला सृष्टिका व्यापार कर्म ही है। श्री शंकराचार्यने भी इस दृश्यमान सृष्टिको कर्मके रूपमें स्वीकार किया है—**अनादौ तु संसारे बीजांकुरवद्धेतुमद्भावेन कर्मणः सर्गवैषम्यस्य च प्रवृत्तिर्न विरुद्ध्यते** (शां० भा० २.१.३५) संसारके अनादि होनेसे, बीज और अंकुरके समान कार्यकारण भावसे कर्म और विषम सृष्टिकी प्रवृत्तिमें किसी प्रकारका विरोध नहीं है। और इस कर्मको साक्षात् ब्रह्म हीसे उत्पन्न हुआ जानो—"कर्म ब्रह्मोद्भवं विद्धि' यहां तक कि उस निर्गुण ब्रह्मको भी सगुण बननेके लिए प्रारम्भमें कर्म ही करना पड़ता है"। सगुणका अर्थ है नामरूपात्मक और नामरूपात्मकका अर्थ है कर्म या कर्मका परिणाम," निर्गुण ब्रह्मने सोचा, मैं अकेला हूं, इसलिए बहुतसे रूपोंमें परिणत हो जाऊं—**सोऽकामयत एकोऽहं बहुस्यां प्रजायेयेति** तदनन्तर उसे ज्ञानमय तपरूप कर्म करना पड़ा—**तस्य ज्ञानमयं तपः** और वह अपनी माया-शक्तिके द्वारा अनेक रूपोंमें प्रगट हो गया। इस प्रकार कर्मका अन्तर्भाव भगवान्‌की माया-शक्तिमें हो जाता है और वह माया अनादि है। जब ब्रह्म और माया नामक कर्मका संयोग अनादिकालसे चला आ रहा है, तो ज्ञानी पुरुष कर्मोंका परित्याग कैसे कर सकता है?

ज्ञानी पुरुषके द्वारा निष्काम बुद्धिसे किये गये कर्म चित्तमलोंके निवारक होते हैं और तदनन्तर ही यथार्थ ज्ञान उत्पन्न होता है—**कषाये कर्मभिः पक्वे ततो ज्ञानं प्रवर्तते** इसलिए ज्ञानोत्पत्तिमें सहायक होनेके कारण कर्म, मुक्तिके साधन ज्ञानके भी साधन होते हैं और उस कर्मरूप प्रधान साधनको न छोड़कर मुमुक्षु मानवको समुच्चय मार्गका अनुसरण करना चाहिए।

अब विचारणीय प्रश्न है कि जो श्रुतियाँ कर्मका निषेध करती हैं और केवल ज्ञानका ही समर्थन करती हैं उनका समन्वय कैसे हो सकता है? उदाहरणके लिए यथा—

कर्मभिर्मृत्युं ऋषयो निषेदुः प्रजावन्तोद्रविणमिच्छमानाः।
अथापरे ऋषयो ये मनीषिणः परं कर्मभ्योऽमृतत्वमानशुः॥

इसके उत्तरमें समुच्चयवादियोंका कहना है कि **कर्मभिः** का अर्थ यहां बिना ज्ञानके किये गये केवल कर्मोंसे है। जो व्यक्ति बिना ज्ञानके कर्म करेगा, वह मृत्युको प्राप्त होगा ही। और इसी प्रकार—

कर्मणा बध्यते जन्तुर्विद्यया तु प्रमुच्यते।
तस्मात्कर्म न कुर्वन्ति यतयः पारदर्शिनः॥

इस स्मृतिका भी अर्थ करना चाहिए कि केवल कर्म करनेसे जीव बन्धको प्राप्त होता है; और ज्ञानपूर्वक कर्म करनेसे तो उसकी मुक्ति होती ही है। इसलिए तत्त्वदर्शी लोग कभी 'केवल कर्म' करनेमें प्रवृत्त नहीं होते।

यहाँ ध्यान देनेकी बात है कि जो कर्म विवेक ज्ञानोत्पत्तिमें सहायक होते हैं; वे बन्धका कारण कैसे बन सकते हैं? बन्धक कर्म तो वे ही होते हैं; जो किसी कामनाको लेकर किये गये हों। अतः इन श्रुति या स्मृतियोंका यह अर्थ कदापि नहीं समझना चाहिए कि यदि मानव किसी प्रकारके कर्म करता है; तो वह बन्धको प्राप्त होता है। अपितु ये वाक्य अज्ञानपूर्वक कर्मोंका ही निषेध करते हैं। इसलिए चित्सुखीमें लिखा गया है:—एतानि वाक्यानि केवलामेव कर्मणां कैवल्यसाधनत्वनिराकरणपराणि समुच्चितानां तूपपद्यते तत्साधनभावः।

ज्ञानपूर्वक कर्म करके मुक्तिको पानेवाले अनेक व्यक्तियोंके उदाहरण भरे पड़े हैं। महाराजा जनक परम ज्ञानी और जीवन्मुक्त पुरुष समझे जाते थे, अन्तमें उन्होंने भी कर्मोंके बलपर ही सिद्धिको प्राप्त किया था—कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः शास्त्र ज्ञानी पुरुषके लिए कर्म करनेका प्रत्यक्षरूपसे विधान करता है—

एषा पूर्वतरा वृत्तिर्ब्राह्मणस्य विधीयते।
ज्ञानवानेव कर्माणि कुर्वन् सर्वत्र सिद्ध्यति॥

(म० भारत, शां० पर्व २३७)

अर्थात् ब्राह्मण या अधिकारी पुरुष के लिए, वंश परम्परासे चली आ रही यही एक वृत्ति या जीविका है कि ज्ञानवान होकर, कर्मोंको करता हुआ (ऐहलौकिक तथा पारलौकिक) सिद्धिको प्राप्त करे।

ब्राह्मण अथवा इतर वर्णोंके लिए, ज्ञान और कर्म, मोक्ष, दिलाने वाला श्रेष्ठ साधन है। जिस प्रकार अन्नसे मिला हुआ मधु और मधुसे मिला हुआ अन्न, दोनों ही मानवके लिए हितकारी होते हैं, उसी प्रकार कर्म और ज्ञान, संसाररूपी व्याधिसे मुक्त होनेके लिए बहुत बड़ी भेषज माने जाते हैं।

तपो विद्या च विप्रस्य निःश्रेयसकरं परम्।
तपसा कल्मषं हन्ति विद्ययाऽमृतमश्नुते॥
यथान्नं मधु संयुक्तं मधुचान्नेन संयुतम्।
एवं तपश्च विद्या च संयुक्तं भेषजं महत्॥

जिस प्रकार पक्षी अपने दोनों पंखोंके द्वारा आकाशमें विचरण करते हैं, उसी प्रकार ज्ञान और कर्मके सहारे नित्य ब्रह्मकी प्राप्ति हो जाती है—

द्वाभ्यामेव हि पक्षाभ्यां यथा वै पक्षिणां गतिः।
तथैव ज्ञानकर्मभ्यां प्राप्यते ब्रह्म शाश्वतम् ॥
(हारीत स्मृति ७-११)

यहाँ मनुष्यकी एक पक्षीके रूपमें कल्पना की जा सकती है। ज्ञान उसका दाहिना तथा कर्म उसका बायाँ पंख है। उसका गन्तव्य स्थान आकाशके समान व्यापक ब्रह्म या परम पिता परमात्मा है; और उसकी प्राप्तिके हेतु उपर्युक्त ज्ञान, कर्म रूप दोनों पंख ही हैं—तत्प्राप्ति हेतुर्ज्ञानञ्च कर्म चोक्तं महामुने! अतः यह सिद्ध है कि मोक्ष प्राप्तिमें कर्म, ज्ञानका सहायक माना जाता है; अतः ऐसे साधन का उपादान करना विवेकी पुरुषके लिए परमावश्यक हो जाता है।

यह ज्ञानकर्म-समुच्चय ऐसा दिव्य साधन है कि समस्त मानवोंके सन्तप्त अन्तःकरणको शान्ति प्रदान कर सकता है। आजके भौतिकवादपर आस्था रखनेवाला मानव, जब कर्तव्या-कर्तव्यके चक्करमें पड़कर, विमोहित होने लगता है तो, यही एकमात्र साधन उसके लिए पथ-प्रदर्शकका काम करता है। समुच्चय मार्गका यह स्पष्ट उद्घोष है, कि जो व्यक्ति सभी प्रकारकी कामनाओं या आसक्तियोंको छोड़कर, निस्पृह होकर, कर्ममें प्रवृत्त होता है, एवं जिसे ममत्व और अहंकार नहीं रहता, उसे ही वास्तविक शान्ति मिलती है। मनुष्यको अपने अमूल्य जोवनको, अज्ञानमय कार्यों तथा प्रपंचमें पड़कर नहीं खोना चाहिए। प्रत्येक क्षणमें अपनी चेतनाको जागृत रखते हुए, आगे बढ़ना ही मानवका धर्म है। अकर्मण्यताके भाव मनमें आते ही मानवका पतन होने लता है। संसारमें मनुष्य वही श्रेष्ठ समझा जाता है, जिसने प्रपंचमें रहकर भी परमार्थको साध लिया हो। मनुष्यको न तो केवल ज्ञान हीसे मोक्ष मिलता है और न केवल कर्म ही मोक्ष-सिद्धिका उपाय है; परन्तु इन दोनोंसे भिन्न ज्ञान और कर्मोंका समुच्चय ही मोक्ष-सिद्धिका द्वार है। भले ही कोई साधक केवल ज्ञान-मार्गका अनुसरण करे अथवा केवल कर्मका, पर अन्तमें उसे समुच्चय-मार्गका आश्रय लेना ही पड़ता है। इस समुच्चय-योगका थोड़ा-सा भी आचरण मनुष्यको बहुत बड़े भयसे छुटकारा दिला देता है। इसलिए भगवान्‌ने गीतामें कहा है—

तस्मादसक्तः सततं कार्यं कर्म समाचार।
असक्तो ह्याचरन् कर्म परमाप्नोति पुरुषः ॥

•

यथार्थदर्शी

सांख्य योगियोंको जो स्थान (स्थिति या परमधाम) प्राप्त होता है, उसे ही कर्मयोगी भी प्राप्त करते हैं, जो सांख्य और कर्मयोग फलस्वरूपमें एक देखता है, वही यथार्थ देखता है। (गीता ५.५)

मथुरा-पञ्चदशी

श्री दुर्गा प्रसाद द्विवेदी

★

जयति सा परमाद्भुतराधिका-रमणवृत्तपवित्रतरी कृता।
कुसुमितद्रुमराजिविराजिता, व्रततिकालतिकापरिवेष्टिता ॥ १ ॥

श्रीकृष्णके अनुपम पवित्र चरित्रसे परमपुनीत एवं पुष्पित तरु-वीरुधों तथा फैली हुई लताओंसे चारों ओर घिरी हुई मथुरापुरी अतिशय सुशोभित है।

सरसरासविहाररसस्वभूः चरणपङ्कजलाञ्छितभूतला।
वनगुहान्तरवालकसज्जिका, नवरतावरतामरसोदका ॥ २ ॥

मथुराकी पग-पग भूमिपर रसमय रास-विहार करनेसे चरणोंके चिह्न अंकित हो गये है। वन कन्दराओंके विहार-स्थल नये-नये अनुरागोंको बढ़ानेवाले हैं और उनके निकट खिले हुए कमलोंसे आकीर्ण जलाशय बहुत ही मनोहारी है।

अभिनवस्फुटशाखिशिखास्खलत्कुसुमसौरभसंकुलसंचरा।
नवदुदारखगावलिरुच्चकैरुपवनापवनाधुतपल्लवा ॥ ३ ॥

नवद्रुमोंसे भरे हुए फूलोंके ढेरके कारण मथुराकी गलियों में चलना कठिन हो गया है और पवनसे हिलाये गये तरुपल्लवों पर मनोहारी पक्षियोंके मधुर-आलापसे उपवन बहुत ही सुहावने प्रतीत हो रहै हैं।

रुचिरकुञ्जगृहान्तरसञ्चरद्भुजगभोजिविकासितताण्डवा।
विपुलसूरसुतापुलिनान्तरे, सुनयनानयनादरजृम्भिता ॥ ४ ॥

मथुराके रमणीय कुञ्जोंमें आनन्दमत्त मयूर नाच रहे हैं और यमुनाका तट मानपूर्वक बुलाई गयी व्रज सुन्दरियोंसे जगमगा रहा है।

विकिरकेलिविमर्दसमुच्चरत्कुसुम - सौरभसान्द्रदिगन्तरा।
किमपि चेतसि नर्म वितन्वती, मुरजितो रजितोद्धतसंपदः ॥ ५ ॥

कहीं पुष्प स्तवकोंपर खेलनेवाले पक्षियोंकी रगड़से फैली हुई पुण्य सुगन्धसे दिशाएँ सुरभित हैं और कहाँ तक कहा जाय, जगह-जगह भगवान् श्रीकृष्णकी विभूतियोंका विकास देख-कर चित्त आनन्दमग्न हो जाता है।

स्फुरितनैकविधच्छवितूलिका, लिखितवर्णगणैर्हरिनामभिः ।
विविधचित्रचरागसुकन्तप्रजा, सुखचिताश्वचिता लयभित्तिषु ॥ ६ ॥

मथुरापुरीके निवासियोंको सभी तरहके सुख प्राप्त हैं। नगरीके हर मकानकी दीवारों पर अंकित भगवान्‌के चित्र-विचित्र नाम बहुत ही लुभावने प्रतीत होते हैं।

निबिडभावसमेधितसुन्दरस्वरजुषां रजसां तमसामपि ।
क्षतिकृतां महतां हरिकीर्त्तन-ध्वनिरमानिरमानितकल्मषा ॥ ७ ॥

मथुरापुरीमें महात्माओं, महापुरुषों द्वारा भक्ति-भाव भरे स्वरसे की गयी हरि-संकीर्तन रजोगुण और तमोगुणको विनष्टकर अकलुष बना देती है।

विबुधसद्मसुपल्लवितोल्लसल्ललितभागवतामृत-पायिभिः ।
विविधभक्तजनैश्च समन्ततोवलयितालयितातालसमन्विता ॥ ८ ॥

पद्मपल्लवोंके वन्दनवारसे विभूषित सत्संग-भवनोंमें भागवतरसामृतका पान करने वाले भगवद्भक्तोंका जमघट है। चारों ओर लय-तालसे वाद्य-ध्वनियाँ गूँजती रहती हैं।

महितरामचरित्रपवित्रिता, ललितसारवनीरतरङ्गिता ।
दशरथस्य पुरीव हरीक्षिता, सुभरताभरताशयसंस्कृता ॥ ९ ॥

जिस तरह भगवान् रामके चरित्रसे पवित्रा सरयूके पावन जलसे पूर्ण, वानरोंसे भरी-पूरी महाराज दशरथकी पुरी अयोध्या भरतजीके निवाससे सुशोभित रही, उसी प्रकार बलरामके चरितसे पुनीता सुन्दर वन-विहारोंसे पूर्ण भगवान् श्रीकृष्णकी दया-दृष्टिसे देखी गयी, नानाविध नाटयशालाओंसे आकीर्ण मथुरापुरी सुशोभित है।

सततसंगतसाधुमहोदयाधिमणिकर्णिक - विष्णुपदाश्चिता ।
स्मरजितो नगरीव शिवोज्ज्वला, सुरुचिरा रुचिराजितनागरा ॥ १० ॥

जिस प्रकार महोदय योगसे विष्णुपदाञ्चि मणिकर्णिका तथा रुद्रगणोंसे काशी सुशोभित है, उसी प्रकार मथुरापुरी भगवान्‌के मन्दिरों, रत्नाभूषणोंसे अलंकृत नागरिकों और नितनूतन मंगलोत्सवोंसे सुशोभित है।

गहनसालसमाकलितावने, प्रतिदिनं विकसन्मधुसूदना ।
यदुपुरीव स सागरसंश्रिता, मधुरसाधुरसा स्फुरदुद्धवा ॥ ११ ॥

जिस प्रकार सागर-तटवर्ती द्वारकापुरी है जिसकी सीमाका उल्लंघन कोई नहीं कर सकता, जहाँ भगवान् स्वयं प्रजापालनमें तत्पर हैं और जहाँ उद्धव विराजते हैं। उसी प्रकार मथुरापुरी भी अद्वितीय धोमाधाम बनी हुई है। तरुओंपर भ्रमर गूँज रहे हैं, भगवान्‌के गोवर्धन-धारणकी कथाका आनन्द छाया रहता है। साधु-महात्मा पुलक-भरे हृदयसे हरिकीर्तन करते रहते हैं और नित नये उत्सवोंकी धूम रहती है।

प्रथितविक्रमरम्यरसाश्रिता, सरितमादधती खलु भास्वतीम् ।
स्फुरितधाममहेशमवन्तिका, कविकलाविकलाकलनालया ॥ १२ ॥

जिस प्रकार महाराजा विक्रमादित्य, महाकवि कालिदास, महाकाल शिव और क्षिप्रा नदीसे अवन्ती—उज्जयिनीपुरी; सुशोभित है, उसी प्रकार भगवान् श्रीकृष्णके जन्म, कर्म और विक्रमके स्मारकोंसे, सिद्ध, सन्तों, महात्माओं, मनीषियों, आचार्यों और कवियोंसे तथा साक्षात् भगवान् श्रीकृष्णकी सत्तासे मथुरापुरी सुशोभित है।

अधिगताधिकदक्षिणमण्डलं, सदनुकम्पकृतस्थितिशालिनी।
मुदितमुक्तिसतीवरकाञ्चिका, सुरचितारचिताघविनाशना॥ १३॥

जिस प्रकार कम्पानदीके तटपर दक्षिणकाञ्ची नगरीमें देवताओंके निवास हैं और वहाँ मुक्ति प्रसन्नतापूर्वक विराजती है, उसी प्रकार यमुनातटवर्ती मथुरापुरी धर्मप्राण, उदारमना, दानदयानिरत महानुभावोंसे सुशोभित है और वहाँकी सती व्रजांगनाओंकी कमरकी करधनी बनी हुई मुक्ति पापोंका क्षय किया करती है।

स्फुरदुदग्रसुपर्वतरङ्गिणी, विबुधदक्षनिरूपितसत्क्रिया।
व्रजवती महतां बहुमायका, गमहितामहिताश्रुतशासनैः॥ १४॥

जिस प्रकार मायापुरी (हरिद्वार) शैलतरंगिणी गंगासे, दक्षप्रजापतिसे नानातरु-लताओं और सन्तों, महात्माओंसे सुशोभित है, उसी प्रकार मथुरा-मण्डल गिरिराजगोवर्धनसे, सूर्यतनया यमुनासे और शास्त्रसम्मत महिमासे मण्डित है। मथुरापुरीमें आचार्यगण, विद्वान् लोग नानाविध श्रौत-स्मार्त्त कर्ममें निरत रहते हैं। यह पुरी सदैव दैवी सम्पदासे भरी पूरी रहती है।

अमरराजपुरीव, सुवज्रिका, भुजगराजपुरीव सुभोगिका।
मधुपुरी प्रतिसद्मसमुल्लसन्नवसुधातलभूषणा॥ १५॥

वह मथुरापुरी देवराज इन्द्रकी पुरी अमरावतीकी तरह तथा नागराजकी पुरी भोगवतीकी तरह सौन्दर्य और सम्पत्ति धारण किये हुए हैं तथा अपने धवलधामोंसे वसुधातलका भूषण बनी हुई है।

●

संसार-सागरसे पार कौन होगा?

जो मनुष्य लौकिक सुख और दुःख दोनोंको अनित्य समझता है, शरीरको अपवित्र वस्तुओंका समूह मानता है तथा मृत्युको कर्मका फल समझता है, सुखके रूपमें प्रतीत होनेवाला जो कुछ भी है, वह सब दुःख-ही-दुःख है—ऐसा मानता है, वह घोर दुस्तर संसार-सागरसे पार हो जायगा।

(महाभारत आश्व० १८/३१-३२)

मन्त्रचिन्तामणि

★

भगवान् शिवने नारदजीसे कहा—देवर्षे ! भगवान् श्रीकृष्णके दो मन्त्र अत्यन्त उत्तम हैं। इन दोनों मन्त्रोंको मन्त्रचिन्तामणि, युगल, द्वय और पञ्चपदी—ये चार संज्ञाएँ दी गयी हैं। इनमें पहले मन्त्रका प्रथम पद है—'गोपीजन', द्वितीय पद है 'वल्लभ' तृतीय है 'चरणान्', चतुर्थपद है 'शरणम्' तथा पञ्चमपद है 'प्रपद्ये'। इस प्रकार यह (गोपीजनवल्लभचरणान् शरणं प्रपद्ये) मन्त्र पाँच पदोंका है। इसका नाम मन्त्र-चिन्तामणि है। इस महामन्त्रमें सोलह अक्षर हैं। दूसरे मन्त्रका स्वरूप इस प्रकार है—'नमो गोपीजन' इतना कह कर पुनः 'वल्लभाभ्याम्' का उच्चारण करना चाहिए। तात्पर्य यह कि 'नमो गोपीजनवल्लभाभ्याम्' के रूपमें यह दो पदों का मन्त्र है। इसमें दस अक्षर हैं।

जो मनुष्य श्रद्धा या अश्रद्धासे एक बार भी इस पञ्चपदीका जप कर लेता है, उसे निश्चय ही श्रीकृष्णके प्यारे भक्तोंका सान्निध्य प्राप्त है। इस मन्त्रको सिद्ध करनेके लिए न तो पुरश्चरणकी अपेक्षा होती है और न न्यास-विधानका ही क्रम अपेक्षित है। देश-कालका भी कोई नियम नहीं है। 'अरि' और 'मित्र' आदिके शोधनकी भी आवश्यकता नहीं है। ब्राह्मणसे लेकर चाण्डालतक सभी मनुष्य इस मन्त्रके अधिकारी हैं। यदि सर्वेश्वर भगवान् श्रीकृष्णमें उनकी भक्ति है तो वे सबके सब अधिकारी हैं; अन्यथा नहीं। इसलिए भगवान्‌में भक्ति न रखनेवाले कृतघ्न, मानी, श्रद्धाहीन और नास्तिकको इस मन्त्रका उपदेश नहीं देना चाहिए। जो श्रीकृष्णका अनन्य भक्त हो, जिसमें दम्भ और लोभका अभाव हो तथा जो काम और क्रोधसे सर्वथा मुक्त हो, उसे यत्नपूर्वक इस मन्त्रका उपदेश देना चाहिए।

इस मन्त्रका मैं (शिव) ही ऋषि हूँ; गोपीवल्लभ श्रीकृष्ण इसके देवता हैं तथा प्रियासहित भगवान् गोविन्दके दास्य-भावकी प्राप्तिके लिए इसका विनियोग किया जाता है। यह मन्त्र एकबारके ही उच्चारणसे कृतकृत्यता प्रदान करनेवाला है।

अब मैं इस मन्त्रका ध्यान बतलाता हूँ। 'वृन्दावनके भीतर कल्पवृक्षके मूलभागमें रत्नमय सिंहासनके ऊपर भगवान् श्रीकृष्ण अपनी प्रिया श्रीराधिकाके साथ विराजमान हैं। श्रीराधिकाजी उनके वामभागमें बैठी हुई हैं। भगवान्‌का श्रीविग्रह मेघके समान श्याम है। उसके ऊपर पीताम्बर शोभा पा रहा है। उनके दो भुजाएँ हैं। गलेमें वनमाला सुशोभित है। मस्तकपर मोरपंखका मुकुट शोभा दे रहा है। मुखमण्डल करोड़ों चन्द्रमाओंकी भाँति कान्तिमान् है। वे अपने चञ्चल नेत्रोंको इधर-उधर घुमा रहे हैं। उनके कानोंमें कनेर पुष्पके आभूषण सुशोभित हैं। ललाटमें दोनों ओर चन्दन तथा बीचमें कुङ्कुम-बिन्दुसे तिलक लगाया गया है जो मण्डलाकार जान पड़ता है। दोनों कुण्डलोंकी प्रभासे वे प्रातःकालीन सूर्यके समान तेजस्वी दिखायी दे रहे हैं। उनके कपोल दर्पणकी भाँति स्वच्छ हैं, जो पसीनेकी छोटी-

छोटी बूँदोंके कारण अत्यन्त शोभायमान हैं। उनके नेत्र प्रियाके मुखपर लगे हैं। उन्होंने लीला-वश अपनी भौंहें ऊँची कर ली हैं। ऊँची नासिकाके अग्रभागमें मोतीकी बुलाक चमक रही है। पके हुए कुन्दरूके समान लाल ओठ दाँतोंका प्रकाश पड़नेसे अधिक सुन्दर दिखायी देते हैं। केयूर, अङ्गद, अच्छे-अच्छे रत्न तथा मुद्रिकाओंसे भुजाओं और हाथोंकी शोभा बहुत बढ़ गयी है। वे बायें हाथमें मुरली तथा दायें हाथमें कमल लिए हुए हैं। करधनीकी प्रभासे शरीरका मध्यभाग जगमगा रहा है। नूपुरोंसे चरण सुशोभित हैं। भगवान् क्रीडारसके आवेशसे चञ्चल प्रतीत होते हैं। उनके नेत्र भी चपल हैं। वे अपनी प्रियाको बार-बार हँसाते हुए स्वयं भी उनके साथ हँस रहे हैं।'

इस प्रकार श्रीराधाके साथ श्रीकृष्णका चिन्तन करना चाहिए। तदनन्तर श्रीराधाकी सखियोंका ध्यान करें। उनकी अवस्था और गुण श्रीराधाके ही समान है। वे चंवर पंखी आदि लेकर अपनी स्वामिनीकी सेवामें संलग्न हैं।

नारदजी! श्रीकृष्णप्रिया राधा अपनी चैतन्य आदि अन्तरङ्ग विभूतियोंसे इस प्रपञ्चका गोपन करती हैं, इसलिए उन्हें 'गोपी' कहते हैं। श्रीकृष्णकी आराधनामें तन्मय होने के कारण वे 'राधिका' कहलाती हैं। श्रीकृष्णमयी होनेसे वे परा देवता हैं। पूर्णतः लक्ष्मीस्वरूपा हैं। श्रीकृष्णके आह्लादका मूर्तिमान् स्वरूप होनेके कारण मनीषीजन उन्हें 'ह्लादिनी' शक्ति कहते हैं। श्रीराधा साक्षात् महालक्ष्मी हैं और भगवान् श्रीकृष्ण साक्षात् नारायण हैं। इनमें थोड़ा-सा भी भेद नहीं है। श्रीराधा दुर्गा हैं तो श्रीकृष्ण रुद्र। वे 'सावित्री' हैं तो ये साक्षात् 'ब्रह्मा' हैं। अधिक क्या कहा जाय, उन दोनोंके बिना किसी भी वस्तुकी सत्ता नहीं है। जड़-चेतनमय सारा संसार श्रीराधा-कृष्णका ही स्वरूप है।

तीनों लोकोंमें पृथिवी सबसे श्रेष्ठ मानी गयी है। उसमें भी जम्बू द्वीप सब द्वीपोंसे श्रेष्ठ है। जम्बूद्वीपमें भी भारतवर्ष और भारतवर्षमें भी मथुरापुरी श्रेष्ठ है। मथुरामें भी वृन्दावन, वृन्दावनमें भी गोपियोंका समुदाय, उस समुदायमें भी श्रीराधाकी सखियोंका वर्ग तथा उसमें भी स्वयं श्रीराधिका सर्वश्रेष्ठ हैं। श्रीकृष्णके अत्यधिक निकट होनेके कारण श्रीराधाका महत्त्व सबकी अपेक्षा अधिक है। वही ये श्रीराधिका हैं, जो 'गोपी' कही गयी हैं। इनकी सखियाँ ही 'गोपीजन' कहलाती हैं। इन सखियोंके समुदायके दो ही प्रियतम हैं। दो ही उनके प्राणोंके स्वामी हैं—श्रीराधा और श्रीकृष्ण। उन दोनोंके चरण ही इस जगत्में शरण देने वाले हैं। मैं अत्यन्त दुखी जीव हूँ, अतः उन्हींका आश्रय लेता हूँ—उन्हींकी शरणमें पड़ा हूँ। शरणमें जानेवाला मैं जो कुछ भी हूँ तथा मेरी कहलानेवाली जो कोई भी वस्तु है, वह सब श्रीराधा और श्रीकृष्णको ही समर्पित है। सब कुछ उन्हींके लिए है। उन्हींकी भोग्य वस्तु है। मैं और मेरा कुछ भी नहीं है।

यह संक्षेपसे 'गोपीजनवल्लभचरणान् शरणं प्रपद्ये' इस मन्त्रका अर्थ है। युगलार्थ है न्यास, प्रपत्ति, शरणागति तथा आत्मसमर्पण—ये पाँच इनके पर्याय हैं। मन्त्रसाधकको रात-दिन आलस्य छोड़कर यहाँ बताये हुए सम्पूर्ण विषयका चिन्तन करना चाहिए।

●

कालतत्त्व

श्री एन. एच. चन्द्रशेखर स्वामी

★

भारतीय दर्शनशास्त्रमें कालके स्वरूपका नाना प्रकारसे वर्णन किया गया है। वर्तमान, भूत और भविष्यके रूपमें हमें इसका अनुभव होता है। त्रिकालका सम्बन्ध परस्पर सापेक्ष है। यह परिणामशील सादि और सान्त है। देहबोध विशिष्ट पुरुष जिन भोगोंका भोग करता है, उसमें काल-धर्म अवश्य क्रियाशील है। सम्प्रति आधुनिक विज्ञान कालके विभिन्न वैचित्र्य और उसके रहस्यका अध्ययन कर रहा है। जो इस मर्त्यलोकमें अपने ही ढंगका है। कृमि, कीट-पतङ्गादिसे लेकर मनुष्य तक सबको कालका अनुभव होता है। जीव जन्तु आयस्च म्रियस्च इस सिद्धान्तके अनुसार उत्पन्न होते हैं और मर जाते हैं। इनका जन्म और मरण पुनः दूसरी योनिमें प्रवेश करनेके लिए है। अतएव चौरासी लाख योनिसे मनुष्य योनिमें आनेके लिए यह कार्यरत होता है, नहीं तो इस पदपर आता ही क्यों?

व्यवहारमें काल सम्बन्ध सूर्यमण्डल और भूमण्डलका है। यह स्पष्ट है कि सूर्य और जगत्का सम्बन्ध है। भौतिक वैज्ञानिक भौगोलिक दृष्टिसे गवेषणा कर रहे हैं। कालके स्वरूप और उसकी क्रियाके सम्बन्धमें कुछ प्रश्न हैं; जिनकी जिज्ञासा सदैव बनी रहती है। यह सत्य है, काल एक प्रवाहके सदृश है। अयन, वसन्तादि ऋतु, मास, पक्ष एवं दिनका चक्र चल रहा है। प्रत्येक सप्ताहके बाद पुनः वे ही वार आते हैं और प्रति पक्षमें उन्हीं तिथियोंका आवर्त्तन होता है। यह आवर्त्तन सदृश होनेपर भी एकसे दूसरेमें अन्तर है। प्रत्येक वर्षमें मासपक्षादिका आवर्तन होता है। इनके साम्य-वैषम्यका कौनसा रहस्य छिपा है? यदि कालको एक गतिशील चक्र माना जाय तो भी साम्य और वैषम्यका क्या रहस्य है? क्योंकि इनकी समानतासे नियतिकृत नियमका पालन होता है। इस नियतिके नियामक कालको संचालित करनेवाला एक अतिरिक्त तत्त्व अवश्य है, जो इसका नियमन करता है।

काल मूलबिन्दुसे निकलकर पुनः आवर्ताकारमें घूम रहा है, प्रत्येक वर्तमान अतीतमें जाता है, किन्तु अनागत अथवा भविष्य केवल अतीतकी आवृत्तिमात्र है। अथवा क्या यह माना जाय कि अनागत नूतन है? इसका स्फुरण वर्तमान स्थितिमें आकर पुनः अतीत हो जाता है। यदि हम कालको चक्ररूप मान लेंगे तो, उसमें जो घटनाओंके स्फुरण वर्तमान स्थितिमें होते हैं, वे कर्मके अनुसार स्फुरण कराते हैं। स्फुरण करानेके लिए काल केन्द्रमें कोई आदर्शलोक है, (Ideal universe) जिसका प्रतिबिम्ब पड़ता है, वह है जगत्। ग्रीक दार्शनिक प्लेटोकी विचारधारा इसी विचारका समर्थन करती है।

तान्त्रिक योगिगण इसी आदर्शलोकको 'महासृष्टि' कहते हैं, जिसका प्रतिबिम्ब जगत्में गतिके कारण भासित हो रहा है, वह है वर्तमान। इसी प्रकार इसी चक्रानुसार अनागत घटना भी कालके अनुसार सामने आती है।

व्यवहारमें सूर्यको मानकर काल-विभाग किया जाता है। इस विभागमें अतिसूक्ष्म दृष्टिसे विचार किया जाय तो वैज्ञानिकोंने 'लाईट ईयर' Light year तक इसका विश्लेषण किया है।

काल समय-बोधक धर्म है। इस बोधक धर्मोंमें कालका बोध होगा और इसका बोध व्यक्तिको होता है। दार्शनिक दृष्टिसे कालको समझना चाहिए और आध्यात्मिक दृष्टिसे इसका रहस्योद्घाटन भी अत्यन्त आवश्यक है।

उपनिषदोंमें कालतत्त्व

साधारणतया संसारके बन्धनका कारण काल है और कर्म इसका सहयोगी है। जन्म लेते ही मनुष्यको अपने अस्तित्वके साथ कालका बोध होता है। शास्त्रीय एवं व्यावहारिक दृष्टिसे कालका त्रैविध्य प्रसिद्ध है वर्तमान, भूत एवं भविष्य कालत्रयसे विमुक्त कामादि रहित अहं प्रत्ययगोचर स्वरूप ही शुद्धात्मा है।[1] इस कालत्रयका कालरूपी धर्म है, इसको चलाने-वाला अधिष्ठाता ब्रह्म[2] है, यह ब्रह्म प्रणव स्वरूप है।

इसके स्वरूपमें आधिदैविक बोधके फलस्वरूप कालका आविर्भाव होता है। कालके पृष्ठमें मात्रा है। कालका सूक्ष्म स्वरूप मात्रासे शुरू होता है। समस्त विश्व मात्रामें भासित होता है। जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति अवस्थाएँ एक मात्राके अन्तर्गत होकर भासित होती हैं। कालका कलन निरन्तर होता रहता है अथवा काल स्वयं परिणमित हो रहा है, क्या काल अधिष्ठातृ स्वरूपमें परिणमित हो रहा है? इसके उत्तरमें तान्त्रिकगण कहते हैं कि कालका एक अधिष्ठातृ-देवता[3] है—वह कालाग्नि शक्तिको अपनी सामर्थ्यके अनुसार चलाता है। काल निरन्तर संसारकी कलनामें उद्युक्त है।[4] कालको साक्षात् नारायण माना गया है।[5]

जगत्में कालके कारण क्रम है। कालजगत्में परिणाम लाता है। कालमें क्रम अवश्य है। इस कालके चालक नारायण हैं जो शक्तिरूपमें काल कहे जाते हैं।

कालबोधके साथ देशका बोध उत्पन्न होता है। ये दोनों असत् स्वरूप हैं।[6] कालत्रय अविद्या अथवा मायाके कारण अनुभवमें आ रहा है। वस्तुतः यह सत्य नहीं है,[7] असत् है।

---

१. संन्यासोपनिषत् २.२७।
२. त्रिपादविभूति; महानारायणोपनिषत्।
३. अथर्व शिरस् ३.१५।
४. अक्ष्युपनिषत् २०।
५. नारायण उपनिषत् २.८।
६. तेजोबिन्दूपनिषत् ६.५४।
७. तेजोबिन्दूपनिषत् ३.४९।

काल कर्मात्मक प्रपञ्च है।[1] इस कालको सङ्कलन करनेवाली एक शक्ति है। वह काली शक्ति कही जाती है। कालके अधिष्ठाता स्वरूपमें श्रीकृष्णने स्वयं अपनेको काल कहा है। 'कालः कलयतामहम्'[2] अर्थात् कलना करनेवालोंमें मैं काल हूँ।

शैवगण शिवको, वैष्णवगण विष्णुको तथा शाक्तगण शक्तिको कालका अधिष्ठाता देवता मानते हैं। इस प्रकार इन सबकी दृष्टिसे काल सृष्टि, स्थिति और संहारका कारण है। कालका मूलकारण[3] सूर्य माना गया है। भौगोलिक काल—दिन-रात्रिका विनियामक सूर्य ही है।

कालमें कलनाका कारण क्षण है। क्षणगत काल—वैचित्र्यका विवरण योग और शास्त्रमें मिलता है।

कालशक्तिसे पञ्चभूतोंमें परिणाम होता है, काल ही पञ्चभूतोंका पाक करता है। काल और प्राणको भगवान् भी कहा गया है। काल मूर्त भी है और अमूर्त भी। काल और कर्मका सम्बन्ध है। अणुरूपी जीव कर्मसंस्कारका भोग करेगा। जिसको भोग करना है उसके लिए उसी प्रकारके शरीरकी अपेक्षा होती है। शरीर और कर्मके माध्यमसे भोग किया जाता है। बिना शरीरके भोग कैसे हो सकता है? कर्म भोगका प्रारम्भ और परिसमाप्ति है। यह प्रारम्भ परिसमाप्तिकी अवधिका बोध ही काल बोध है। इस अवधिकी स्थिति कालतत्त्वको स्वीकार किये बिना सम्भव नहीं है।

कालकी अत्यन्त सूक्ष्म अवधि क्षण कहलाती है। यह क्षण ही क्षणान्तरकी सृष्टि करता है। क्षण और क्षणान्तरमें लव, त्रुटि और कलाकी मात्राके अनुसार सूक्ष्म कालका स्थूल काल तक स्फुरण हो जाता है। स्थूल काल प्राणसे प्रारंभ होता है। काल व्यापक और अव्यापक भी है।' कालत्रयका कारण सूक्ष्म और स्थूल बोध है। कालकी गति सदैव वक्राकार है। अतएव इसका स्वरूप वक्र माना गया है। इसका बोध अणुरूपी आत्माको होता है। इसको अन्धकार एवं रात्रिकी[4] उपमा दी जाती है और रात्रिको ही वैष्णवी शक्ति कहा जाता है। वस्तुतः स्थूल कालसे व्यवहारका अनुभव होता है। कालगतिके कारण सेकेण्ड, मिनट और घण्टेके हिसाबसे व्यवहार किया जाता है। इस समयका विभाजन सूर्यको आधार मानकर किया गया है। मानसिक काल (Pschological time) इस कालसे विलक्षण है। इसकी परिधि व्यापक है। इसके अन्तरालमें अनन्त प्रकारके रहस्य पड़े हैं। यह अत्यन्त वेगशाली है। यह हमारे प्राणापान वायुसे सम्बन्ध रखता है। इसके ऊपर सम्पूर्ण विश्व चल रहा है। यह किसी व्यक्तिमें तुरन्त बन्द हो जाय तो वही उसकी दुर्दशा कहलाती है। कालका सम्बन्ध प्राणके साथ है। यह अत्यन्त स्पष्ट है। कालका बोध एवं अनुभव होता है। कालत्रय आवागमनशील है। कालके दो बिन्दु हैं। इन दोनों बिन्दुओंके चारों ओर आवर्त (दक्षिणावर्त और वामावर्त

---

१. स्वसंवेद्योपनिषत् २।

२. श्रीमद्भगवद्गीता अ० १०-श्लो० ३०।

३. मैत्रोपनिषत् ६.१४।

४. देव्युपनिषत् ८।

रूपमें) निरन्तर चल रहा है। इनकी गतिके कारण प्रत्यावर्तन होता है। इसको प्रकृति कहते हैं।

जगत्में वैचित्र्य और परिणाम कालके कारण होता है। यदि कालतत्त्व जगत्में न हो तो जगत्की सत्ता ही नहीं रहेगी।[1]

काल भिन्न-भिन्न लोकोंमें भिन्न-भिन्न प्रकारका है। तिर्यक् प्राणीसे लेकर मनुष्य तक, मनुष्यसे लेकर ब्रह्मातक कालका अन्तर है। जैसे ब्रह्मलोक, विष्णुलोक तथा रुद्रलोक आदिसे काल अलग-अलग प्रकारका है। मर्त्यलोकमें इससे सर्वथा भिन्न है। इन लोक-लोकान्तरोंमें कालका स्वरूप भी पृथक्-पृथक् प्रकारका है। प्रत्येक लोकमें अणु है (beings) है उनका उस लोकके अनुकूल शरीर है और तदनुसार उनका भोग होता है। उस भोगकी अवधि निर्धारित है। भोग समाप्त होते ही उस शरीरका सम्बन्ध खत्म हो जाता है। समष्टिरूपमें भी काल है। उसमें व्यक्ति व्यष्टिरूपमें कालका अनुभव करते हैं। यह समष्टिकाल प्रत्येक लोकमें रहता है। इसका अनुभव उस लोकका अधिष्ठाता करता है। खण्डकालको उस लोकके व्यक्ति अनुभव करते हैं। यह हुआ लोक-लोकान्तरमें कालका अनुभव। कालके साथ कर्म और भोगका सम्बन्ध है। इस भोग कालका आदि और अन्त है। साधारण मनुष्य स्थूल कालका अनुभव करता है। योगिगण सूक्ष्म कालका अनुभव करते हैं।

आधुनिक मनोवैज्ञानिक स्थूलकाल (Physical time) और मानसिक काल (Psychological time) को मानते हैं। यह काल अति रहस्यात्मक है। इसका मनोलोकके साथ सम्बन्ध है। योगिगण प्राणगतिके साथ कालका सम्बन्ध मानते है। काल प्राणायाम द्वारा मनुष्यकी अमृतरूपी कलाको नष्ट करके उसे मृत्युग्रस्त करता है; यह योगियोंका कथन है। अतएव प्राणवायुका जयकरके ही अमरत्व प्राप्तिका मार्ग प्रशस्त होता है—ऐसा योगीजन बताते हैं। काल मृत्यु है। काल शरीरका नाश करता है। काल विभिन्न प्रकारके परिणाम उत्पन्न करता है और इसीके कारण मृत्यु होती है।

आजतक यथार्थरूपमें इसपर कोई योगी विजय नहीं पा सका। कई लोग इसको स्वभाव मानते हैं। कुछ लोग इसको अनिवार्य मानते हैं। यह परस्पर सापेक्ष रहनेके कारण सुख दुःखका कारण होता है। इसका रहस्य समझना अत्यन्त कठिन है। योगी क्षणमें अनुसन्धान करके कालको अपने अधीन कर लेते हैं। किन्तु इच्छा शक्ति द्वारा कुछ क्षण तक ही वे ऐसा कर पाते हैं। इसकी गतिको जानकर योगविज्ञानवेत्ता योगी सृष्टि भी करते हैं। वे प्रकृतिकी सहायतासे कालमें पदार्थोंका सृजन कर सकते हैं। जब तक क्षणका ज्ञान नहीं होता तब तक योगी इस प्रकारके निर्माण शक्तिको प्राप्त नहीं कर सकता है। काल चक्रका ज्ञान जिस व्यक्तिको होता है। वह त्रिकालका साक्षात्कार करके तीनों कालोंकी घटनाओंको जान सकता है। काल एक रहस्यात्मक तत्त्व है।

---

१. तेजोबिन्दूपनिषत् ५. ६. ६३।

एक शाम और

श्री मन्नालाल 'अमन्द'

एक शाम जिन्दगीकी और भी गुजर गयी।

व्योमसे उतर उतर
भूमिपर बिखर बिखर
बादलोंकी ओटसे, चाँदनी निखर गयी।
एक शाम जिन्दगीकी और भी गुजर गयी।
आयुकी कड़ी कड़ी, वर्षमें बदल गयी।
वर्ष, मास, वारकी सीढ़ियाँ उतर गयी।
घूँट घूँट प्यासकी तृप्ति पूछती रही।
कालके प्रवाहसे स्वास जूझती रही।

आशकी नयी दुल्हन,
ओढ़ मृत्युका कफन,
जन्मके सुहागकी बात सब बिसर गयी।
एक शाम जिन्दगीकी और भी गुजर गयी।
तारकोंकी अर्थियाँ उठ गयी विहानमें।
चाँद खो गया कहीं रिक्त आसमानमें।
शेष स्वप्नकी कराह राह देखती रही।
सृष्टिकी अतुल व्यथा घाव सेंकती रही।

हेर हेर थक गया,
व,व और पक गया,
मोतियोंकी चाहमें, सीपियां उधर गयीं।
एक शाम जिन्दगीकी और भी गुजर गयी।
अब न चाह शेष है, अब न राह शेष है।
किन्तु भोग-तृप्तिको कामना अशेष है।
रूपकी अनूप धूप छाँहमें बदल गयी।
स्वप्न ढल सके अभी न किन्तु रात ढल गयी।

प्रातकी किरण किरण,
छू गयी सुमन सुमन,
मौन सुप्त वेदना आज फिर मुखर गयी।
एक शाम जिन्दगीकी और भी गुजर गयी।

पहली अगस्तको सारा भारत जिनकी निर्वाण-तिथि मना रहा है—

लोकमान्य बालगंगाधर तिलक

आचार्य श्री सीताराम चतुर्वेदी

★

पहली अगस्त सन् १९२० को महात्मा गांधीके असहयोग-आन्दोलनका पहला दिन था। उस दिन बम्बईमें हड़ताल होनेकी घोषणा की गयी थी किन्तु जितनी आशा की जाती थी उससे भी अधिक हड़ताल हो गयी। सारा बम्बई पागल होकर 'सरदार-गृह' की ओर उमड़ पड़ रहा था। जान पड़ता था—जैसे उनका कोई आत्मीय बिछुड़ गया हो। सबके मुँहपर हवाईयाँ उड़ रही थीं, मुँह उतरे हुए थे और किसी-किसीकी आँखें आँसुओंमें डूबी हुई थीं। पूछनेपर कोई उत्तर नहीं दे रहा था क्योंकि जो सुना गया था उसपर सहसा किसीको विश्वास न हुआ। पर बात सत्य थी। भारतका तिलक उस दिन भारतके भालपरसे मिट गया था। स्वतन्त्रता-युद्धके सर्वश्रेष्ठ सेनानी, निर्भीक योद्धा, विद्वान्, राजनीतिज्ञ लोकमान्य बालगंगाधर तिलक उस दिन भारत-माताको बिलखते छोड़कर संसारसे चल दिये। सम्पूर्ण राष्ट्रकी नैयाको बीच सागरसे तटपर लगानेसे पूर्व ही उसका कर्णधार स्वयं काल सागरमें विलीन हो गया। आज उस घटनाको ३५ वर्ष हो चुके हैं किन्तु भारतके आँसू अभी तक गीले हैं और जान पड़ता है स्वतन्त्रता प्राप्त कर लेनेपर भी अभी बहुत दिन सूखेंगे नहीं।

सुयोग्य पिता पण्डित गङ्गाधर रामचन्द्र तिलकके सुयोग्य पुत्र लोकमान्य पण्डित बाल गङ्गाधर तिलकका जन्म सं० १९१३ वि० की आषाढ़ कृष्णा ६ (२२ जुलाई, सन् १८५६) को बम्बई बेदके रत्नागिरि नगरमें हुआ था। १० वर्ष तक लोकमान्य तिलकने अपने पितासे ही शिक्षा पायी जो गणित और व्याकरणके असाधारण विद्वान् थे। वहीं तिलकजीको गणित और मराठीमें अत्यन्त रुचि उत्पन्न हो गयी। इसके पश्चात् वे पूनाके अंगरेजी विद्यालयमें भर्ती किये गये जहाँ उन्होंने १६ वर्षकी अवस्थामें मैट्रिकुलेशन परीक्षा उत्तीर्ण कर ली। दैवदुर्विपाकसे उसी वर्ष उनके पिताका देहान्त हो गया किन्तु चाचा और माँके उद्योग और प्रेरणाके बलपर उन्होंने १८७६ ई० में बी० ए० और १८७९ में एल-एल० बी० परीक्षाएँ उत्तीर्ण कर लीं। वे गणितमें इतने कुशल थे कि उनके अध्यापक भी उनकी प्रचण्ड प्रतिभाका लोहा मानते थे। वकालत पढ़नेके समय ही श्री आगरकरजीसे उनकी मैत्री हो गयी और इन दोनों मित्रोंने सरकारी नौकरीको नमस्कार करके देश-सेवाका व्रत ले लिया।

श्री आगरकर और तिलकजीने पहले बिना पैसे और बिना सहायताके ही शिक्षा-प्रचारका कार्य प्रारम्भ किया। उसी समय संयोगसे विष्णुशास्त्री चिपलूणकर तथा एम० बी० नामजोशीका सहयोग भी इन्हें प्राप्त हो गया। इस सम्मिलनके फलस्वरूप सन् १८८० की जनवरीमें पूनेमें न्यूइंगलिश स्कूलकी स्थापना हो गयी। पाँच-छह महीनेके पश्चात् प्रसिद्ध पण्डित वी०एस० आप्टे भी इस कार्यमें आ जुटे। धीरे-धीरे देशके बहुतसे विद्वान् इस कार्यमें सम्मिलत हो गये। स्कूल चल निकला।

स्कूलके साथ ही पण्डित विष्णुशास्त्रीने मराठी 'केसरी' अंगरेजीमें 'मराठा' नामसे दो पत्र निकाले। 'केसरी'के सम्पादक आगरकर और 'मराठा'के सम्पादक तिलक नियुक्त हुए। उसी समय कोल्हापुरके महाराज शिवाजीरावपर अत्याचार होते सुनकर तिलक और आगरकरने बड़े प्रचण्ड लेख लिखे और दोनों सम्पादक-बन्धु चार-चार महीनेके लिए जेल भेज दिये गये। इस जेल यात्रासे दोनों पत्रोंका और स्कूलका बड़ा आदर बढ़ गया। देशमें हलचल मच गयी। सम्पूर्ण जनता इनकी सहायता करने दौड़ पड़ी।

इसी बीच सहसा चिपलूणकरजीका देहान्त हो गया। सारा भार नामजोशीजी और तिलकपर आ पड़ा। सन् १८८४ में इन्होंने दक्षिण हिन्दी-समिति नामक संस्था स्थापित की जिसके अध्यक्ष तिलकजी हुए। इस दलमें केलकर, ध्रुव, गोले, भानु, पाठणकर और गोखले आदि अनेक नवयुवक भी सम्मिलित हो गये। सन् १८८५ में उनका स्कूल बढ़कर कालेज हो गया और उसका नाम पड़ा, फर्गुसन कालेज। इसके सब आजीवन सदस्योंने प्रतिज्ञा की कि हम २० वर्ष तक कालेजमें अध्यापनका काम करेंगे।

सन् १८८८ से तिलक और आगरकरमें सामाजिक और धार्मिक विषयोंपर मतभेद हो गया जिससे आगरकरने 'केसरी' और 'मराठा'से सम्बन्ध तोड़ दिया और 'केलकर' ही दोनोंके सम्पादक हो गये। उसी समय प्रो० गोखले 'सार्वजनिक सभा'के मन्त्री हो गये। यह बात तिलकजीको भली न लगी और उन्होंने १८९० में त्यागपत्र दे दिया।

समितिसे सम्बन्ध तोड़कर तिलकजी स्वतन्त्र हो गये। इन्हीं दिनों सरकारने सहवास समिति विधान (एज ऑफ क्सेण्ड बिल) पास करना चाहा। तिलकजीने इसका घोर विरोध किया, क्योंकि तिलकजीकी नीति थी कि सामाजिक और धार्मिक विषयोंमें सरकार दालभातमें मूसरचन्द न बने।

फर्गुसन कालेजसे नाता तोड़कर इन्होंने पूनेमें लॉक्लास खोल दी जो पीछे चलकर बम्बई प्रदेशका सर्वश्रेष्ठ लॉ-कालेज बन गया। उन्हीं दिनों केलकरने भी पत्रोंसे सम्बन्ध तोड़ दिया। अतः तिलकजी लॉ भी पढ़ाते थे और दोनों पत्रोंका सम्पादन भी करते जाते थे।

तिलकजी केवल राजनीतिमें ही समय नहीं बिताते थे। वे साथ-साथ अपने प्राचीन साहित्यकी भी छान-बीन करते चल रहे थे। वैदिक जीवनके सम्बन्धमें उन्होंने जो खोजपूर्ण 'आर्यायन' शीर्षक लेख लिखे थे वे १८९२ में जब प्राच्यविद्या विशारदोंकी लन्दनस्थ सभामें पढ़े गये तो इतिहास और साहित्य-जगत में क्रान्ति मच गयी।

इन्हीं दिनों सन् १८९४ में बड़ौदा राज्यके दीवान और तिलकके मित्र रावसाहब बापटपर घूसखोरीका मुकदमा चला। तिलकजीने वकीलकी हैसियतसे जो वहस की उसे सुनकर बड़े-बड़े दबंग वकीलोंने दाँतोंतले उंगली दबा ली। वापटजी छूट गये। तिलकजीका श्रम सफल हो गया।

इन्हीं दिनों तिलकजी बम्बई प्रान्तीय परिषद्के मन्त्री, कांग्रेस डेक्केन स्टैंडिंग कमेटीके मन्त्री बम्बई युनिवर्सिटीके फेलो तथा म्युनिस्पैलिटीके चेयरमैन चुने गये।

सन् १८९३ ई० में बम्बई में हिन्दू मुसलमानोंमें बड़ा भारी दंगा हुआ था। तिलकजीने स्पष्ट कह दिया कि इसका कारण लार्ड डफरिनकी भेद-नीति है। इसी समय सरकार तिलकजीसे रुष्ट हो गयी और यह रुष्टता बढ़ती गयी। उनकी सरकार-विरोधी-नीतिसे उनका पत्र भी लोकप्रिय होता चला गया। सन् १८९५ ई० में वे पूना कांग्रेसकी स्वागत समितिके मन्त्री बनाये गये। कांग्रेस-पण्डालमें 'समाज सुधारक सभा' करनेका उन्होंने विरोध किया और त्यागपत्र भी दे दिया, परन्तु अपने कार्यमें शिथिलता नहीं दिखलायी। वे कट्टर हिन्दू और आस्तिक ब्राह्मण थे, इसीसे कुछ नये विचारके लोग उन्हें मनुदा कहनेका भी दुःसाहस किया करते थे। वे प्राचीन भारतीय रूढ़ियोंके साथ-साथ नवीन युगकी श्रेष्ठताओंका सामंजस्य करनेके भी पक्षपाती थे। इसीलिए एक ओर उन्होंने निष्ठावान् ब्राह्मणोंकी भाँति आचारवान् जीवन व्यतीत किया और दूसरी ओर अपनी कन्याओंको उच्च शिक्षा दिलायी, बड़ी अवस्थामें उनका विवाह किया और स्वयं विदेश यात्रा भी की।

तिलकजीने महाराष्ट्रमें गणपति-उत्सव और शिवाजी-उत्सव प्रचलित करके सर्वप्रथम १८९५ में शिवाजी-उत्सव मनाया। शिवाजीकी स्मृति रक्षाके लिए उन्होंने रायगढ़, दुर्गके संस्कारके निमित्त 'केसरी'में अपील प्रकाशित की और बात की। बादमें २० हजार रुपये एकत्र हो गये।

सन् १९९६ और ९७ में महाराष्ट्रमें घोर दुर्भिक्ष और महामारी (प्लेग) फैली। दुर्भिक्ष पीड़ित प्रजाको सब सुविधा दिलानेके लिए लोकमान्यने आकाश-पाताल एक कर दिया। सरकारका कार्यालय आवेदन-पत्रोंसे भर दिया, किन्तु सरकार तो तिलकजीसे रुष्ट थी इसलिए उसने इस ओर कुछ भी ध्यान न दिया। तब तिलकजीने ही सस्ते अनाजके गोले खुलवा दिये और पूनेमें जब महामारीने अपना विकट रूप दिखाया तब भी करुण हृदय तिलकने हिन्दू महामारी अस्पताल खोलकर रोगियोंके लिए एक अनाजका गोला भी खुलवा दिया। सरकारकी ओरसे महामारीकी रोक-थामके लिए जो उपाय किये जाते थे उनसे प्रजाको बड़ा कष्ट होता था। तिलकजीने इन सब स्वेच्छाचारी राजकर्मचारियोंके विरुद्ध लेख लिखना प्रारम्भ कर दिया किन्तु साथ ही सरकारके अच्छे कामोंकी प्रशंसा भी की।

१३ जून सन् १८९७ को जो शिवाजी-उत्सव मनाया गया। उसका विवरण १५ जूनके 'केसरी'में कुछ कविताओंके साथ प्रकाशित हुआ। इसके एक ही सप्ताह पश्चात् २२ जूनको मिरैल्ड और लेफ्टिनेन्ट आयर्स्ट नामक दो अंगरेजोंकी हत्या हो गयी। एंग्लो-इंडियन पत्रोंने बड़ा कोलाहल मचाया। सरकारने इन हत्याओंका सम्बन्ध केसरीमें प्रकाशित कविताओंसे

जोड़कर तिलकजी पर राजद्रोहका अभियोग चला दिया और वे २७ तारीखको बम्बई में बन्दी कर लिए गये। जमानत अस्वीकृत हो गयी परन्तु दौरा जज श्री बदरुद्दीन तैयबने उन्हें जमानतपर छोड़ दिया। ८ सितम्बरसे सात दिनतक अभियोगकी सुनवाई हुई। कलकत्तेसे मि० प्यू और गौर्थ नामक दो प्रसिद्ध बैरिस्टर तिलकजीकी ओरसे पक्षवाद करने आये थे। जस्टिस स्टैचीके न्यायकक्षमें अभियोग चल रहा था। ९ जूरियोंमें-से ६ अंगरेज और ३ हिन्दुस्तानी थे। जजने तिलकको डेढ़ वर्ष कड़े कारावासका दण्ड दिया। जूरियोंमें-से सभी अंग्रेजोंने उन्हें अपराधी और सभी भारतीयोंने उन्हें निरपराध बताया। हाईकोर्टके फुल बंचमें अभ्यर्थना की गयी पर कोई फल न निकला। प्रिवी कौन्सिलमें अभ्यर्थना करनेकी सम्मति हुई। तिलकके मित्र स्व० श्रीदाजी आबाजी खरे और उनके सौलिसिटर श्रीकांगा सब कागज पत्र लेकर विलायत पहुँचे। ब्रिटिश राज्यके भूतपूर्व प्रधान मन्त्री श्रीआस्क्विथकी बैरिस्टरी उन दिनों बड़ी चमकी हुई थी। उन्होंने तिलकजीकी पैरवी करना स्वीकार कर लिया। उन्होंने बड़ी बहस की, किन्तु दण्ड कम न हो सका। अन्तमें प्रो० मैक्समूलर और विलियम हन्टरने उनके अपूर्व पाण्डित्यका उल्लेख करके महारानी विक्टोरियासे तिलकके छुटकारेके लिए प्रार्थना की और दण्डकी अवधि पूरी होनेसे पूर्व ही तिलक छोड़ दिये गये। वन्दी-घरके कष्टोंसे वे बहुत कृश हो गये थे। वहाँसे आकर पहले तो वे सिंहगढ़के स्वास्थ्य-निवासमें जाकर रहे, फिर दिसम्बरमें मद्रास कांग्रेस अधिवेशनमें सम्मिलित होकर वहाँसे लंका चले गये।

अनेक कार्योंमें व्यस्त रहनेपर भी तिलकजीका अध्ययन चलता रहा। इस बार उन्होंने भूसम्पत्ति, ज्योतिष, गणित और जीवशास्त्र आदि अनेक गम्भीर शास्त्रोंके आधारपर 'दि आर्कटिक होम इन दि वेदाज' नामक ग्रन्थ की रचना की। इस ग्रन्थमें उन्होंने यह प्रतिपादित किया कि आर्योंके पूर्वज उत्तर ध्रुवमें ही रहते थे क्योंकि उस समय ध्रुव-प्रदेश आजके समान हिमाच्छन्न नहीं था। इस ग्रन्थकी बड़ी प्रशंसा हुई।

सन् १९०१ की १९ जुलाईको पूना जिला-मजिस्ट्रेटकी अदालतमें लोकमान्य तिलकपर बाबा महाराजकी पत्नी ताई महाराजके गोदवाले अभियोगमें झूठा साक्ष्य देनेपर १९०४ तक अभियोग चलता रहा जिसमें तिलकजीको डेढ़ वर्ष कड़ा कारावास और एक सहस्र रुपया आर्थिक दण्ड मिला। जिला जजके यहाँ अपील करनेपर दण्ड घटाकर छह महीने कर दिया गया पर आर्थिक दण्ड वही बना रहा। हाईकोर्टने उन्हें निरपराध कहकर छोड़ दिया। कहा जाता है कि सरकारने इस मुकदमेमें ताई महाराजका बड़ा पक्ष लिया किन्तु तिलकजी विजयी हुए। इस झगड़ेसे छुट्टी पाकर तिलकजीने केसरीके प्रसारकी ओर ध्यान दिया। महाराज गायकवाड़ने सस्ते दामों, उन्हें अपना भवन नये मुद्रणालयके लिए दे दिया। तब तिलकजीने लीथो मशीनके लिए मराठीके लीथो टाइपका आविष्कार किया, जिसका विलायतके कारीगरोंने अनुमोदन भी किया पर वैसी लीथो मशीन मिल न सकी क्योंकि विलायती कारीगर केवल एक मशीन ढालनेको तैयार नहीं थे।

इधर कांग्रेसमें राष्ट्रभाषा उन्नतिके सम्बन्धमें काशीकी नागरी प्रचारिणी सभाके अधिवेशनमें लोकमान्य तिलकने स्पष्ट कहा था।

'...... हमारे विचारसे नागरी अक्षर ही सबसे अधिक उपयुक्त हैं, अतएव नागरी-लिपि राष्ट्र-लिपि होनेके योग्य है।'

सन् १९०५ में लॉर्ड कर्जनने बंगालके दो टुकड़े कर दिये। बंगाल गरज उठा, क्षुब्ध हो उठा। उस गर्जनने सारे भारतको जगा दिया। वन्देमातरम् गान उसी समयसे भारतीयोंका मूल मन्त्र और 'स्वदेशी' उनका सिद्धान्त हो गया। लोकमान्य तिलकने भी अपने पत्रमें इसपर भरपूर लिखा, नागपुरसे नागरीमें भी मराठी 'केसरी' निकलने लगा। इसका फल यह हुआ कि वे १९०६ वाली कलकत्ता कांग्रेसके सभापति न चुने जा सके। किन्तु तिलकजीके विरोधियोंका कार्य सिद्ध नहीं हुआ क्योंकि विदेशी बहिष्कारका प्रस्ताव स्वीकृत हो ही गया। अगले वर्ष कांग्रेस होनेवाली थी नागपुरमें, पर हुई सूरतमें। वहाँ परस्पर इतना झगड़ा हुआ और जूते चले जो किसीसे छिपा नहीं है। वहीं गरम दल और नरम दलकी उत्पत्ति हुई। कांग्रेस नरम दलवालोंके हाथ आगयी और तिलकजी कांग्रेससे अलग होकर कार्य करने लगे।

१९०८ में बम-प्रयोगकी धूम थी। मुजफ्फरपुरमें धोखेसे दो अंग्रेज महिलायें मारी गयी। सारे देशमें हलचल मच गयी। तिलकजीने अपने पत्रमें इस प्रकारकी बमबाजियोंको हानिकर बताते हुए कहा कि सरकार यदि दमनसे काम लेगी तो अवश्य फल उलटा होगा। सरकारको इन लोगोंमें राजद्रोहकी गन्ध आयी। वे २४ जून १९१८ को बम्बईके सरदार गृहमें बन्दी कर लिये गये। अभियोग चला। जस्टिस दावरने सात अंग्रेज जूरियोंके वचनपर लोकमान्य तिलकको ६ वर्ष कालेपानी और १००० रु० का दण्ड दिया। दण्ड सुनते ही तिलक कुछ क्रुद्ध हुए। सिंहके समान गरजते हुए उन्होंने कहा—'जूरियोंका निर्णय चाहे जो कुछ हो, पर मैं निश्चयके साथ कहता हूँ कि मैं निर्दोष हूँ। संसारके समस्त कार्योंपर कुछ दूसरी ही उच्चतर शक्तियाँ शासन करती हैं और सम्भवतः ईश्वरकी यही इच्छा हो कि वह मेरे उद्देश्यको स्वतन्त्र रहनेकी अपेक्षा कष्ट सहाकर ही पूर्ण करे।

सम्पूर्ण भारतीय पत्रों, नेताओं, 'न्यूज,' 'मांचेस्टर गार्जियन' और 'टाइम्स', आदि पत्रोंने भी लोकमान्यको निर्दोष बताया। किन्तु उसी दिन २२ वीं जुलाईकी रातको तिलकजी साढ़े नौ बजे माण्डले भेज दिये गये, जहाँ उन्होंने लोकप्रसिद्ध 'गीतारहस्य' लिखा जो भगवद्गीतापर सर्वश्रेष्ठ टीकाओंमें-से एक समझी जाती है। इसी समय उनकी धर्मपत्नीका भी देहान्त हो गया।

१९ जुलाई सन् १९२४ को वे पूरा दण्ड भोगकर स्वदेश लौटे। संसार बदल चुका था। सप्तम एडवर्डका स्वर्गवास, पंचम जॉर्जका सिंहासनारोहण, दिल्लीका राजसी दरबार, बंगालका संयोग, मोर्ले-मिण्टो सुधार, लार्डहार्डिंग्जका सुशासन आदि बहुत परिवर्तन हो गये थे। उनके छूटनेके २० दिन पश्चात् ४ अगस्तको ही जर्मन महायुद्ध छिड़ गया।

इस बीच सूरत कांग्रेसके पश्चात् १९१४ तक नरम और गरम दल एक नहीं हो पाये थे। किन्तु सन् १९१५ ई० की बम्बई कांग्रेसमें तिलकजीने भाग लिया और दोनों दल एक हो गये। यद्यपि तिलकजी राजनीतिक क्षेत्रमें गोखलेके बड़े विरोधी थे, किन्तु गोखलेकी अचा-

तक सन् १९१५ की फरवरी में मृत्यु होनेपर उन्होंने गोखलेकी बड़ी गुणावली गाई और उनकी स्वदेश-भक्तिका अत्यन्त मार्मिक विवेचन किया।

तिलकजी फिर दूने उत्साहके साथ स्वराज्यके लिए प्रचार करने लगे और उन्होंने घोषित कर दिया कि 'स्वराज्य हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है, हम उसे लेकर रहेंगे।'

तिलक महाराज ६० वर्ष पूरे करके ६१वेंमें पदार्पण कर रहे थे। उनकी प्यारी जन्मभूमिके भक्तोंने उनकी हीरक जयन्ती मनाई और उन्हें एक लाखकी थैली भेंट की। उसी दिन पूनेके जिला मजिस्ट्रेटने उनसे एक वर्षतक शान्ति रखनेके लिए २० सहस्रकी जमानत माँगी। श्रीजिन्नाने तिलकजीकी ओरसे पैरवी भी की पर कुछ फल न हुआ। अन्तमें हाईकोर्टने जमानत और मुचलका रद्द कर दिया। तिलकजीकी विजय हुई और कोर्टमें ही उन्हें लोगोंने माला पहनाकर जयजयकार की। पर सरकार कब माननेवाली थी। उसने इनका मुँह बन्द कर दिया और व्याख्यान देनेका निषेध कर दिया।

इन्हीं दिनों सरवेलेण्टाइन शिरालेने 'इण्डियन अनरेस्ट' नामक पुस्तक लिखी जिसमें तिलकजीपर बड़ा विष उगला। इसपर लोकमान्य तिलकने उसपर मानहानिका अभियोग चलाया पर वही हुआ जो आशा थी। इसमें तिलकजीको ३ लाख रुपयेकी हानि तो हुई पर तिलकजीने विलायतमें रहनेका लाभ उठाया और भारतीयोंकी सच्ची स्थिति योरोपवालोंके सामने रख दी। वारसाईमें जर्मन-सन्धि परिषद्के सभापति मोशिए क्लीमेन्शूके नाम उन्होंने बड़ा लम्बा चौड़ा पत्र लिखकर अपने अधिकारोंकी मांग उपस्थित की किन्तु वह भी रद्दीकी टोकरीमें डाल दी गयी।

इसी बीच पंजाबमें जलयानावाला बागका हत्याकांड हुआ। इस सम्बन्धमें तिलकजीने विलायतमें बड़ा आन्दोलन किया जिसमें बाम्बे क्रोनिकलके सम्पादक बी० जी० हॉर्निमनने उन्हें पर्याप्त सहायता दी। उन्हीं दिनों भारतके शासन-सुधारोंपर विचार करनेवाली संयुक्त समितिने तिलकजीको बुलाया पर स्पष्ट और निर्भीक वक्ता तिलककी बातें बड़ी उपेक्षाकी दृष्टिसे सुनी गयीं। इधर पंजाबके सम्बन्धमें जाँच करनेके लिए इण्टर कमेटी सबने स्वीकार कर ली जिसका फल प्रकट ही है।

इसी अवसरपर तिलक वहाँपर बीमार पड़ गये और सन् १९१९ के नवम्बरमें भारत चले आये। वे बड़े दुर्बल हो गये थे पर चुप फिर भी न रह सके।

इसी बीच १३ वीं जुलाईको ताई महाराजवाला अभियोग नये सिरेसे चला किन्तु इसमें भी तिलकजीकी जीत हुई। २१ जुलाईको उसका निर्णय हुआ और २३ जुलाईको उन्हें कोलाबासे निमन्त्रण मिला जहाँ उनकी ६६ वीं वर्षगाँठ मनायी गयी थी। वहाँसे लौटते हुए मोटरपर उन्हें सर्दी लग गयी और २६ वीं को उनकी अवस्था बिगड़ने लगी। सारे देशमें शोक-छा गया। महात्मा गांधी और मौलाना शौकत अली उन्हें देखने आये। तिलकजीने गांधीजीसे पूछा—'आप कब बम्बई आये?' उन्होंने कहा 'आज'। बस इतनी ही बात हो सकी। २३ जुलाई शुक्रवारको उनके दीपककी बुझती हुई लौका अन्तिम स्वरूप था। सहसा

३१ जुलाई की रातको १२ बजकर ४० मिनटपर भगवान् तिलककी आत्मा ६६ वर्ष पुरा नै जीर्ण शरीरको छोड़कर मुक्त हो गयो और सारा भारत उस दिन फूठ-फूठकर रोया।

लोकमान्य तिलकका जीवन वीरका जीवन था जिसने झुकना तो सीखा नहीं था। कर्मवीरता, लगन, त्याग और सहिष्णुताकी मूर्ति लोकमान्य तिलक, भारतके अमुकुट सम्राट थे जो हमारे सामने अपने जीवनका यही आदर्श छोड़ गए हैं—

अर्जुनस्य प्रतिज्ञे द्वे न दैन्यं न पलायनम्।

(अर्जुनकी दो प्रतिज्ञायें हैं—न तो किसीके आगे गिड़गिड़ाऊँगा न पीठ दिखाकर भागूँगा।)

सदुपदेश-सार

सत्संगोंमें समय लगा तू!
जगद्धाममें भाग्योदयको,
अपनी जीवन-ज्योति जगा तू!
प्रभुकी प्रभुता, सर्वव्यापिनी-
उसके प्रेमानन्द पगा तू!
बहुत काल भव-भ्रममें बीता,
अब मत तू, बन मूढ़ ठगा तू!
'कविपुष्कर' मंगलमय शिवके-
चरणोंका हो दास सगा तू!

—'कविपुष्कर'

लोकमान्य तिलक : विनोदके क्षण

श्री केशवदेव मिश्र 'कमल'

☆

लोकमान्य तिलक अपने समयके संसार भरके सात या आठ महामेधावी पुरुषोंमेंसे एक थे। उनके लिए यह बता देना साधारण-सी बात थी कि अमुक विषय अमुक ग्रन्थमें है और अमुक लेख अमुक सन्‌में लिखा गया था। कभी-कभी तो वह यह भी बता दिया करते थे कि अमुक लेख अमुक ग्रन्थके अमुक पृष्ठपर है।

वे बड़े विनोदी भी थे और हर कामको प्रसन्नतापूर्वक बड़ी खूबीके साथ निपटाते थे। वह अपने विनोदी व्यक्तित्व और क्रियाकलापों द्वारा स्वयं प्रसन्न रहकर दूसरोंको भी प्रसन्न रखनेकी कलामें दक्ष थे। उनकी विनोदप्रियताके कुछ दिलचस्प प्रसंग प्रस्तुत हैं।

दो दादा : एक बालक

सन् १९१७ में बम्बई प्रदेश कांग्रेसका अधिवेशन नासिकमें हुआ। उसमें बड़े-बड़े नेताओंके भाषणोंका कार्यक्रम था। दादा साहेब खापर्डे और दादा साहेब केलकरके स्वराज्यपर लम्बे-लम्बे भाषण हुए। स्रोता ऊबने लगे। तभी बालगंगाधर तिलक मंचपर आये और बोले—'अबतक आप दो दादाओंके उपदेश सुन रहे थे। मैं बालक (बाल) आपको क्या उपदेश दे सकता हूँ।'

सीनियर

बात सन् १९०८ की है। लोकमान्य तिलकके 'केसरी' पत्रपर एक मुकदमा चल रहा था। मुकदमेके सिलसिलेमें उन्हें उच्च न्यायालयकी चौथी मंजिलपर ठहराया गया था। एक दिन लोकमान्यने उस व्यक्तिसे, जो उनके लिए खाना लाता था, पूछा—'तुम जानते हो कि मुझे सरकारने यहाँ क्यों रखा है?'

उसने उत्तर दिया—'जी, नहीं।'

इसपर लोकमान्यने मुस्कराते हुए कहा—'इस समय जिस न्यायाधीशकी अदालतमें मुझपर मुकदमा चल रहा है, उससे मैं सीनियर हूँ; इसीलिए उसे तीसरी मंजिलपर बैठाया गया है और मुझे चौथी पर।

महाराष्ट्रीयका गौरव

लोकमान्य तिलक जब बम्बई व्यवस्थापिका सभाके लिए चुने गये, तब उनके एडवोकेट मित्रने उनसे विनोदमें कहा—'अब तो आप सम्मानित सदस्य हो गये हैं, इसलिए आप जब गवर्नरके दरबारमें जायेंगे, तब पैरोंमें जूते, शरीरपर अंगरखा और सिरपर पगड़ी पहनकर जायेंगे या सूट-बूटमें शान-शौकतसे ?'

लोकमान्यने उत्तर दिया—'अंग्रेज हमारे देशमें आये हैं; इसलिए यहाँकी जलवायुके अनुसार अपनी पोशाकमें उन्हें ही परिवर्तन करना चाहिए न कि हमें। मैं तो व्यवस्थापिका-सभामें अपनी स्वाभाविक वेशभूषामें ही जाऊँगा।

व्यवस्थापिका-सभाका अधिवेशन प्रारम्भ होनेके कुछ दिन बाद लोकमान्य तिलककी उन्हीं एडवोकेट महोदयसे भेंट हुई। उन्होंने कहा—'आप तो व्यवस्थापिका-भवनमें अपनी स्वाभाविक वेश-भूषामें ही गये होंगे, परन्तु जूते तो आपको बाहर सीढ़ियोंपर ही उतार देने पड़े होंगे ?'

लोकमान्यने तुरन्त उत्तर दिया—हम लोग पेशवाओंके समय भी इसी प्रकार अपने जूते सभा-भवनके बाहर ही उतारकर अन्दर जाते थे। अतः गवर्नरके यहाँ भी यदि मैं जूते उसी प्रकार बाहर उतारकर गया, तो इसमें नयी बात कौन-सी हो गयी। प्रत्युत इसमें तो एक महत्त्वपूर्ण बात यह हुई कि समस्त भारतमें भारतीयोंके जूतोंकी रक्षा गोरे सिपाही करेंगे तथा पूनाके एक महाराष्ट्रीयको सबसे प्रथम गौरव मिलेगा।'

दोनों समकक्ष

लोकमान्य जब विलायतसे लौटे तब पूनामें ओंकारेश्वर-मन्दिरके प्रांगणमें उनके तथा दादा साहेब केलकरके सम्मानमें एक छोटा-सा स्वागत-समारोह किया गया। इसके बाद, जब लोकमान्य दो घोड़ोंकी अपनी बग्घीमें बैठनेके लिए चले तब एक स्वयंसेवकने आगे बढ़कर उन्हें पहनायी गयी मालाओंको बग्घीमें रखनेका प्रयत्न किया। पर उन्होंने कोचवानको वह हार देते हुए हँसते-हँसते कहा—'यह हार अब अपने दोनों घोड़ोंके गलेमें डाल दो। जिस तरह तुम्हारे ये दोनों घोड़े इस बग्घीको खींचते हैं वैसे ही हम दोनों देशरूपी बग्घीको खींचते हैं, इसलिए हममें और इन घोड़ोंमें कोई अन्तर नहीं है।'

कारपोरेशनकी बीमारी

लोकमान्यके जीवनकी यह अन्तिम घटना उनकी जागरूकता और विनोद-प्रियताका एक जीता-जागता उदाहरण है। आधी रात ढल चुकी थी। डाक्टरोंने उन्हें पूरी तरह जगाये बिना ही मुँहमें दवा डाल दी।

वे उस अवस्थामें ही बोले—'क्या पिलाया मुझे ?'

'कुछ नहीं, पानी ही पिलाया है'—डाक्टरने कहा।

पर लोकमान्य डाक्टरकी चतुराई समझ गये, बोले—'आपके म्युनिसिपल कार्पोरेशनकी मेरी ही तरहकी बीमारी कैसे हो गयी ?'

यथार्थमें बात यह थी कि डाक्टरोंने उन्हें मीठी दवा दी थी, ताकि वह आसानीसे हजम हो जाये और मुँहका स्वाद भी न बिगड़े।

परन्तु लोकमान्य अन्तिम क्षणोंमें भी इतने सजग थे कि वह तुरन्त समझ गये कि मुझसे बात छिपाई जा रही है। तभी उन्होंने अपनी तुलना बम्बई कार्पोरेशनसे की जिसके नलोंमें-से डाक्टरोंके कथनानुसार मीठा पानी आ रहा था। डाक्टर भी उनके तीक्ष्ण व्यंग्यको समझ गया।

आंध्रके अवतारी पुरुष वीरब्रह्मम् :

जीवनकी एक अलौकिक घटना

डॉक्टर के० रामनाथन्

★

वीरब्रह्मम् तीर्थयात्रा करते हुए एकबार बनगानपल्ले गांवमें पहुँचे। वहाँ एक चबूतरे-पर सो गये। रातके समय उन्होंने किसीसे अन्नकी याचना नहीं की, इसलिए बेचारे रातभर भूखे रहे। जिस चबूतरेपर वे सोये हुए थे, वह गरिमरेड्डि अच्चम्माका था जो सद्गुण सम्पन्न, धनी, भगवान्‌की अनन्यभक्त और दानशील एक महिला थीं। उन्होंने अपने नौकरोंको तड़के जगानेके लिए घरका दरवाजा खोला, तो देखा कि वहाँ एक तेजस्वी युवक बैठा हुआ है। उससे आकृष्ट होकर अचनम्माने उसे अपनी गोसंरक्षण-शालामें गोपालकके रूपमें नियुक्त कर लिया। अचम्मा द्वारा दी हुई बासी भातकी गठरी लेकर गायोंको हाँकता हुआ वह युवक पहाड़तक जाया करता। वहाँ वह हरे-भरे घासके मैदानमें गायोंको खड़ाकर उनके चारों ओर लकीर खींच गायोंकी फिक्र छोड़कर अपने काममें निमग्न हो जाता। शाम होते ही वह अपनी गायोंके साथ अपनी मालिकनके यहाँ पहुँच जाता।

इस प्रकार कुछ दिन बीत गये। वीरब्रह्मम् हर रोज गायोंके झुण्ड वहीं छोड़कर कहीं चला जाता और वहाँपर स्थित एक ताड़के पास जाकर उसके ऊपरके भागको देखता। तत्क्षण वह वृक्ष नीचे झुक जाता और उस पेड़से आवश्यक पत्तोंको वह काट लेता था। फिर वह वृक्ष ज्यों-का-त्यों खड़ा हो जाता था। वह बासी भातकी गठरीको फेंक देता और गुरिजारि वृक्षसे कुछ कांटोंको लेकर ताड़के पत्तोंके साथ एक गुफामें चला जाता। ताड़के पत्तोंपर वह गुरिजारिके कांटोंसे कुछ लिखता और उन पत्तोंको वहीं सुरक्षित रखकर रात होनेके पहले ही गुफासे बाहर आकर गायोंके झुंडके साथ घर लौट आता था।

एक दिन वीरब्रह्मम् गुफामें थे। इतनेमें कुछ जंगली जानवर गायोंको मारकर खानेके लिए वहाँ पहुँचे। उनके द्वारा खींची गयी रेखा पार करना उनके लिए असम्भव हो गया। जानवर इस ताकमें बैठे रहे कि जब गायें उस रेखासे बाहर आयें, उनपर हमला किया जाय। कुछ मुसाफिरोंने इस दृश्यको देख अच्चमासे वीरब्रह्मम्‌की शिकायत की। अच्चम्माने उनकी बातोंकी परीक्षा करनेकी ठानी।

एक दिन अचचम्मा वीरब्रह्मम्‌से पहले उस पहाड़के पास पहुँचीं और एक झाड़ीमें छिप बैठी रहीं। उन्होंने देखा कि वीरब्रह्मम्‌ने आकर गायोंके झुण्डके चारों ओर पूर्ववत् वृत्ताकार रेखा खींची। उनके देखते ही ताड़का वृक्ष नीचे झुक गया और वीरब्रह्मम्‌ने उसके पत्ते काट लिये।

पश्चात् वह वृक्ष यथावत् खड़ा हो गया। इसके बाद 'गुरिजारि'के काँटे तोड़कर वे गुफाके अन्दर चले गये। इन दृश्योंको देखकर अच्चम्माके आश्चर्यका ठिकाना न रहा। उसी समय एक बाघ और एक चीता आये और दोनोंने उसी समय रेखाके अन्दर जानेकी कोशिश की; पर भयके कारण अन्दर नहीं आ सके। थोड़ी देरतक चक्कर काटकर वे वहाँसे कहीं चले गये। इस दृश्यको अच्चम्माने देखा तो वह चुपचाप गुफामें गयी। थोड़ी ही दूर जानेपर उन्होंने प्रकाश देखा। वह प्रकाश वीरब्रह्मम्की आँखोंसे आ रहा था। उसी प्रकाशमें बैठकर ताड़-पत्रोंपर वे लिखते जाते थे। लिखना समाप्त होते ही उन्होंने पत्रोंको एकत्र किया। यह देख अच्चम्मा उनके पैरोंपर जा गिरी और कहने लगीं।

'सर्वेश्वरावतार! आपने मुझे अपने यथार्थ स्वरूपसे अनभिज्ञ रखा। साधारण मनुष्य समझकर मैंने आपको एक ग्वालेके रूपमें नियुक्त कर महान् पाप किया। आप साक्षात् श्रीगोविन्द हैं, मनुष्य नहीं। कलियुगके पापोंको दूर करनेके लिए ही आपने यह अवतार धारण किया है। अनाथरक्षक! वैकुण्ठवासी! आप मेरे पापोंको क्षमाकर मुझे मोक्ष प्रदान कीजिये।'

वीरब्रह्मम्ने प्रत्युत्तर दिया: 'माँ! मुझे प्रसन्नता हुई कि तुमने मेरी परीक्षा ली। मैं तो एक पागल हूँ, भगवान् बिल्कुल नहीं। तुमने मुझे आश्रय देकर पुत्रवत् आदर प्रदान किया। मेरी मालिकन होकर तुम्हारा मेरे पैर पड़ना बिल्कुल उचित नहीं। पैरोंको छोड़ो।'

अच्चम्माने कहा: 'प्रभो! मुझे पागल मत बनाइये। मैं आपकी यह बात सुनना नहीं चाहती। जबतक आप मुझे ब्रह्मोपदेश देनेका वादा नहीं करेंगे, आपके पादपद्मोंको नहीं छोड़ूँगी।'

वीरब्रह्मम्ने कहा: 'माता! डरो मत! तुम्हें ब्रह्मोपदेश देकर तारनेके लिए ही मैं तुम्हारे घर आया हूँ। अभी तुम्हारे तरनेका समय नहीं आया। इसीलिए चुप हूँ। माँ! आजके तीसरे दिन यागंटि-क्षेत्रमें तुम्हें ब्रह्मोपदेश दूँगा। यह बात किसीसे मत कहना।'

तदनन्तर एक दिन वे दोनों यागंटि पहुँचे। वहाँके तीर्थोंमें दोनोंने स्नान किया और यागंटीश्वरकी पूजा की। इसके उपरान्त वीरब्रह्मम्ने अच्चम्मासे पद्मासन लगाकर बैठनेके लिए कहा। वीरब्रह्मम्के उपदेशका सार इस प्रकार है: 'माता! 'ॐ नमः शिवाय' यह पंचाक्षरी मन्त्र है। पवित्र मन और वाणीसे इसका जप करनेपर मोक्षकी सिद्धि होती है। 'ॐ'से ही समस्त सृष्टि उत्पन्न हुई है। 'न' कालको सूचित करता है। 'म' स्वयंप्रकाश परब्रह्मका प्रतिपादन करता है। 'शिव' शब्दका अर्थ शाश्वत है। उपर्युक्त पंचाक्षरी मन्त्रका पूर्ण अर्थ है: 'इस संसारके रूपमें स्वप्रकाश परब्रह्मस्वरूप ही स्थिर है।' ॐ ह्रीं क्लीं श्रीं शिवाय ब्रह्मणे नमः यह द्वादशाक्षर मन्त्र है। इस मन्त्रमें महाशक्ति है और इसका प्रभाव अनन्त है। अतः इसका भी जप करनेसे तुम्हें मोक्षकी प्राप्ति होगी।'

उपदेशके अनन्तर अच्चम्माने वीरब्रह्मम्की हार्दिक स्तुति की। उन्होंने बनगानपल्ले गाँवमें वीरब्रह्मम्के लिए एक मठका निर्माण कराया। वीरब्रह्मम् उस मठमें 'कालज्ञान'की रचना करते हुए अच्चम्माको धर्मोपदेश भी दिया करते थे।

वसुधाका स्वर्ग : वृन्दावन

श्री जगन्नाथ मिश्र "कमल"

वसुधापर मनभावन पावन, स्वर्ग-सदृश है वृन्दावन।
क्रीड़ा-भूमि कृष्ण-केशव की, मुरली-स्वर-मुखरित वृन्दावन॥

जहाँ प्रेमकी गाथा अंकित है, तृण-तृणपर पल्लव-दलपर-
जहाँ गगनसे झरते रहते, भक्ति-भावके कुसुम निरन्तर॥

जहाँ खोजने आते राही, भक्ति-प्रेमकी अमृत-धार।
जहाँ विहग-दल करते रहते, मनमोहनकी जयजयकार॥

जहाँ रातमें रजत बरसता, और प्रातमें नव कंचन।
वसुधापर मनभावन पावन, स्वर्ग-सदृश है वृन्दावन॥

शतदल-दलमें श्याम रंग है, कुसुमोंमें है श्याम-माधुरी।
श्यामाकी सुधि लिये नाचती केकी, बनकर श्याम-परी॥

तरु कदम्ब हैं स्वप्न देखते, रास-लालसे खिली दिशाएँ।
पवन-लहरमें लहराती हैं, पीताम्बर-रँग-रँगी लताएँ॥

श्यामा-श्याम-नाम जल-थलमें, पथ-परागमें चिह्न चरणका।
यह पराग चन्दन जन-जनका, जगमें जीवन और मरणका॥

जहाँ व्यथित हैं व्यथा भुलाते और न करते व्याकुल क्रन्दन।
वसुधापर मन भावन पावन स्वर्ग-सदृश है वृन्दावन॥

श्रीरामका 'रामत्व'

श्री बलराम शास्त्री, एम० ए० आचार्य

★

आदिकाव्य वाल्मीकि-रामायण और तुलसीदासके रामचरित-मानसके अध्ययनसे अवगत होता है कि दोनों महाकवियोंने श्रीरामके 'रामत्व'को अपनी-अपनी पद्धति और विचारधाराके अनुसार दो रूपोंमें देखा, समझा और उसे अपने-अपने महाकाव्योंमें उतारा है। कई स्थलोंपर श्रीरामके रामत्वका निरूपण दोनों महाकवियोंने भिन्न-भिन्न प्रकारोंसे किया है। सन्त तुलसीदासके राम 'परब्रह्म परमात्मा' हैं। अतः वे अनादि, अनन्त, अजन्मा, सच्चिदानन्द, अरूप और अलौकिक हैं। आदिकविने कई स्थलोंपर श्रीरामके रामत्वको एक महापुरुषके रूपमें सामने रख दिया है। कई स्थलोंपर दोनों महाकवियोंने 'राम'के रामत्वमें कोई भेद नहीं माना। आदिकवि वाल्मीकिके राम परब्रह्म परमात्मा होते हुए 'महाराज दशरथके लाड़ले लाल भी हैं। सन्त तुलसीदासके राम वे हैं, जिनमें योगीजन रमण करते हैं :

(१) रमन्ते योगिनो यस्मिन्निति रामः।
(२) दशरथस्यापत्यं पुमानिति दाशरथिः रामः।

सन्त तुलसीके राम जहाँ सत्यस्वरूप परब्रह्म परमात्मा और अखिल ब्रह्माण्डके नायक हैं, वहीं आनन्ददाता भी हैं। वे ही राम महाराज दशरथके अजिरमें विचरनेवाले और सम्पूर्ण संसारको प्रकाशित करनेवाले भी है।

सब कर परम प्रकासक सोई। राम अनादि अवधपति सोई॥

वे ही राम निर्गुण हैं, मायारहित हैं और मायाके स्वामी भी हैं। निर्लेप होते हुए भी सर्वगुणोंके धाम हैं, सर्वव्यापक हैं। अखिल ब्रह्माण्डके स्वामी, अविनाशी और चिदानन्द हैं। अखिल संसारके विश्राम-स्थल भी हैं।

जो आनन्दसिन्धु सुखरासी। सीकर ते त्रैलोक्य सुपासी॥
सो सुखधाम राम अस नामा। अखिल लोक दायक बिस्रामा॥
व्यापक ब्रह्म अलख अविनासी। चिदानन्द निर्गुण गुनरासी॥

सन्त तुलसीदासके राम और आदिकविके राम परब्रह्म परमात्माके रूप अवश्य हैं; किन्तु आदिकविके राम नरचरित करनेमें तदाकार, तद्‌रूप हो गये और उन्होंने नर-चरित रचनेवाले रामका वास्तविक वर्णन भी किया। लेकिन सन्तकवि तुलसीदासजीने रामके 'नर'-रूपको उभरने नहीं दिया है। आदिकविने रामके रामत्वका यथातथ्य वर्णनकर अपनी काव्य-

कलाको सामने रखा है। उन्होंने रामकी तुलना, वरुणदेव, कामदेव, अग्निदेव, यमदेव, और कुवेरसे भी की है। राम विष्णुके अवतारके रूपमें अवतरित हुए—इसे दोनों कवियोंने समान रूपमें माना और स्वीकार किया है। सन्त तुलसीदासजीपर 'अध्यात्म-रामायण' जैसे ग्रन्थों-के अध्ययनका प्रभाव पड़ा है। अध्यात्म-रामायणके बालकाण्डके प्रथम अध्यायमें 'राम'के रामत्वका जो रूप समझाया गया, उसीका सन्त तुलसीजीने रूपान्तर कर दिया है :

> प्रभु जे मुनि परमारथवादी। कहहिं राम कहँ ब्रह्म अनादी॥
> सेष सारदा बेद पुराना। सकल करहिं रघुपति गुन-गाना॥
> तुम्ह पुनि राम राम दिनराती। सादर जपहु अनंग-अराती॥
> राम सो अवध-नृपति सुत सोई।
> जो नृप तनय तो ब्रह्म किमि, नारि-बिरह-मति भोर।
> देखि चरित महिमा सुनत, भ्रमित बुद्धि अति मोर॥

सन्त तुलसीदासजीने स्थान-स्थानपर शंकाएँ करवाकर उनका समाधान भी कराया है। सन्तकविने परब्रह्म परमात्मा रामके बारेमें सती द्वारा शंका करवाकर भगवान् शंकरजीके जीवनमें महान् परिवर्तन लाया और भगवान् शंकर और माता पार्वतीके शुभविवाहकी पवित्र योजना तैयार करा दी। सन्तकविने रामका रामत्व 'ब्रह्मत्व'में देखा और समझा; अन्योंको दिखलाया और समझाया। तुलसीदासजीने यह माना कि रामने अपने भक्तोंके हितके लिए। उनके कल्याणकी कामनाके लिए नाना प्रकारके चरित किये।

रामके रामत्वको विभीषणने भी समझा, जो उनके परम भक्त थे। सन्तकविने भक्त विभीषणसे कहलवाया है (यह प्रसंग उस समयका है, जब विभीषण अपने ज्येष्ठ भाई रावणको समझाते हैं) :

> राम अनामय अज भगवन्ता। व्यापक अजित अनादि अनन्ता॥

फिर भी पापात्मा रावण विभीषणका कथन समझ नहीं पाया।

रामके रामत्वकी बात निषादराजको भी समझायी गयी। लक्ष्मणजी कहते हैं :

> राम ब्रह्म परमारथरूपा। अविगत अलख अनादि अनूपा॥
> सकल विकाररहित गत-भेदा। कहि नित नेति निरूपहिं वेदा॥

काकभुशुण्डजी गरुडजीसे कहते हैं : 'राम ब्रह्म हैं, निरीह हैं और रजोगुणसे रहित हैं, वे ही राम अविनाशी हैं।

समुद्रके किनारे पहुँचनेपर सीताजीकी खोज करते समय जब निराशाका वातावरण छा गया, तो वन्दरोंने यह समझ लिया कि सीताका पता न लगनेपर 'राम' और राजा सुग्रीव दोनोंकी ओरसे यातनाएँ मिलेंगी। सम्भवतः उन वन्दरोंने यह भी समझा कि राम अपनी सीताके वियोगमें दुःखी हैं। व वियोगी हैं और वियोगी राम अपने वशमें नहीं हैं। वे बलवान् तो हैं, किन्तु महामानवमात्र ही हैं। बन्दरोंकी शंकाओंका समाधान करते हुए जाम्बवान् उन्हें समझाते हैं।

तात राम करि नर जनि जानहूँ। निर्गुन ब्रह्म अजित अज जानहूँ॥

सतीकी भाँति माता पार्वतीजीके मनमें भी 'राम' के रामत्वके प्रति शंका हुई थी। फिर भी जहाँ सतीजीमें हठवादिता थी वहीं पार्वतीजीमें जिज्ञासा। सतीका समाधान दुःखद रहा तो पार्वतीजीकी शंकाका समाधान सुखद। भगवान् शंकर माता पार्वतीजीको समझाते हुए कहते है :

सोई राम व्यापक ब्रह्म, भुवन-निकायपति माया-धनी।
अवतरेउ अपने भगत-हित, निज तन्त्र नित रघुकुलमनी॥

इन्हीं तथ्यों और प्रमाणोंके आधारपर सन्तकविको भी कहना पड़ा :

व्यापक ब्रह्म निरंजन निर्गुन बिगत बिनोद।
सो अज प्रेम भगतिबश कौसल्याकी गोद॥

रामका रामत्व अखिल ब्रह्माण्डका कारण और कर्ता दोनों है। राम यज्ञकर्ता भी हैं, और यज्ञ करानेवाले भी। विश्वामित्रके रूपमें यज्ञकर्ता और दाशरथी रामके रूपमें यज्ञ करानेवाले। यज्ञके रक्षक भी है और यज्ञविध्वंसकोंके संहारक भी। सन्तकवि तुलसीदासजी कहते हैं :

पुरु सिंह दोउ बीर हरषि चले मुनि-भय-हरन।
कृपासिन्धु मति धीर, अखिल बिस्वकारन करन॥

रामका 'रामत्व' ही ब्रह्माके रूपमें संसारकी सृष्टि करता है, रामका रामत्व ही विष्णुके रूपमें पालन करता है और उसी रामका रामत्व शंकरके रूपमें संहारक भी है :

उमा रामकी भृकुटि बिलासा।
होई बिस्व पुनि पावइ नासा॥

राम जब सृष्टि करते हैं तो दूसरोंको सहायता नहीं लेते, इस तथ्यका उद्घाटन स्वयं सृष्टिकर्ता ब्रह्माजीने ही किया है :

जेहि सृष्टि उपाई, बिबिध बनाई संग सहाय न दूजा।
सो करउ अघारी, चिन्त हमारी, जानिय भगति न पूजा॥
जो भवभय-भंजन, मुनिमन-रंजन, खण्डन बिपति-बरूथा।
मन बच क्रम बानी, छाड़ि सयानी, सरन सकल सुरयूथा॥

यहाँ यह शंका उत्पन्न हो सकती है कि सर्वत्र सृष्टिकर्ता ब्रह्माजी हो माने गये, ब्रह्म या रामको सृष्टिकर्ता कहीं नहीं माना गया है? इस शंकाका समाधान भी साथ ही साथ है। रामके रामत्वसे ही ब्रह्माजीकी उत्पत्ति होती है। वे ही विष्णु हैं, वे ही राम हैं। राम ही ब्रह्मा हैं। अतः रामके स्रष्टा होनेमें सन्देह क्यों?

तुम ब्रह्मादि सकल जग स्वामी।

वे ही राम ब्रह्मादि सभी देवोंके स्वामी हैं, स्रष्टा हैं और पालक हैं। वे ही राम सकल ब्रह्माण्डमें व्याप्त हैं। वे ही राम समस्त संसारके प्रकाशक, उद्बोधक और सचेतक हैं।

विषय करन सुर जीव समेता। सकल एक ते एक सचेता॥
सब कर परम प्रकाशक जोई। राम अनादि अवधपति सोई॥

वे ही राम ज्ञानके स्रोत भी हैं। मायाके पति भी है। जड़तारूपी मायामें सत्यताका जो आभास है या आभास होता है, वह भी रामके प्रसादसे ही सम्भव है। राम ही सगुण हैं और राम ही निर्गुण। वे ही कौशल्या और महाराज दशरथके सुत हैं और सीताके पति भी। वे ही राम अयोध्याके राजा भी हैं। रामके रामत्वमें कोई भेदभाव नहीं है।

सगुनहिं अगुनहिं नहीं कछु भेदा। गावहिं मुनि पुरान बुध वेदा॥

निर्गुण और सगुणमें कोई भेद नहीं है। गुणरहित भी सगुण होता हैं। जो तत्त्व जलमें है, वही हिममें और वही तत्त्व उपलमें भी है। हिम, जल, उपल एक ही तत्त्वके बने हैं और भिन्न-भिन्न नामोंके हैं। अग्नितत्त्व प्रकाशमें भी हैं और काष्ठमें भी। वह दोनोंमें रहकर एक ही तत्त्वका परिचायक है। सन्तकविने कहते हैं:

जो गुनरहित सगुन सोई कैसे। जलु हिम उपल बिलग नहिं जैसे॥
एक दारु गत देखिय एकू। पावकसम युग ब्रह्म विवेकू॥

इस प्रकार सगुण, निर्गुण एक ही हैं। यही रामका रामत्व है। इसी तत्त्वको कठवल्ल्युपनिषद्' में बताया गया है।

अग्निर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव।
एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा रूपं रूपं प्रतिरूपं बभूव॥

सन्त तुलसीदासजीने स्पष्ट कहा है: 'निर्गुण राम मायाके सहारे सगुण बनकर अपने भक्तोंके भयको दूर करते हैं, दुष्टजनोंका संहार करते हैं और पृथ्वीके भारको उतारते हैं। अतः रामके रामत्वकी महिमा अकथनीय, अवर्णनीय और अवचनीय है।' रामत्वकी महिमाको कथन द्वारा कहा नहीं जा सकता। न तो उसका वर्णन ही सम्भाव्य है और न वाणी उनकी महिमाका बखान करनेमें शक्त है। सन्त तुलसीदासजीने इस स्थलपर वेदोंको भी असमर्थ पाया है। सतीजीको समझाते हुए शंकरजी कहते हैं।

मुनि धीर योगी, सिद्ध संतत विमल मन जेहिं गावहिं।
कहि नेति निगम, पुरान आगम, जासु कीरति गावहिं॥
सोई राम व्यापक ब्रह्म भवनु-निकायपति मायाधनी।
अवतरेउ अपने भक्त-हित निज तंत्र नित रघुकुलमनी॥

उन्हीं रामने ब्रह्मके रूपमें शंकरजीको दर्शन दिया। भगवान् शंकरने उनको पहचान लिया और पहचानकर उनका अभिवादन किया। उस स्थलपर सतीजीको रामका रामत्व समझमें नहीं आया। सन्तकविने इस प्रसंगको अधिक स्पष्ट कर दिया है। रामके रामत्वको

मुनिजन ध्यान करके भी जल्दी समझ सकनेमें असमर्थ हैं। वेद उसे 'नेति-नेति' कहकर अपना पिण्ड छुड़ाता है। उसी रामके रामत्वको स्वायम्भु मुनिने अतिकठोर तप करके पहचाना।

अगुन अखण्ड अनन्त अनादी। जेहि चितवहिं परमारथ बादी॥
नेति नेति जेहि बेद निरूपा। निजानन्द निरुपाधि निरूपा॥
सम्भु बिरंचि बिष्णु भगवाना। उपजहिं जासु अंस ते जाना॥
ऐसेउ प्रभु सेवक बस अहई। भगत-हेतु लीला-तनु धरई॥

रामके रामत्वसे अनेक शिव, ब्रह्मा और विष्णु प्रकट होते हैं। वे ही राम अपने भक्तोंके लिए लीला-शरीर धारणकर अवतरित होते हैं। रामके रामत्वको राजा जनकने पहचाना। वे योगी थे, ज्ञानी थे। उनके लिए वह सब सम्भव हो सका। अपने 'जामाता'रूप रामके रामत्वकी महिमाका वर्णन करते हुए जनकराज कहते हैं :

राम करौं केहि भाँति प्रसंसा। मुनि महेश मन मानसहंसा॥
करहिं जोग जोगी जेहिं लागी। कोहु मोहु ममता मद त्यागी॥
ब्यापक ब्रह्म अलख अबिनासी। चिदानन्द निरगुन गुनरासी॥
मन समेत जेहि जान न बानी। तरकि न सकहिं सकल अनुमानी॥
महिमा निगम नेति कहि कहहिं। सो तिहुँ काल एकरस रहहिं॥

वन-यात्रामें राम और सीताको पृथ्वीपर सोते हुए देखकर निषादराजको जब महान् सन्देह हुआ, तो उस समय लक्ष्मणजीने उसकी शंका इन शब्दोंमें दूर कर दी :

सखा परम परमारथ एहू। मन क्रम बचन रामपद-नेहू॥
राम ब्रह्म परमारथ रूपा। अबिगत अलख अनादि अरूपा॥
सकल बिकाररहित गतभेदा। कहि नित नेति निरूपहिं बेदा॥

तब निषादराजको रामका रामत्व समझमें आ गया। सन्तकवि तुलसीदासजीने सगुण और निर्गुण रूपोंमें सगुण रूपको समझाना कठिन माना और निर्गुण रूपको सरल बताया। सन्त-कविके मतसे निर्गुणमें सरलता और सगुणमें कठिनतासे समझनेकी क्षमताके कई कारण हैं। सगुण और निर्गुणके रूपको समझाते हुए काकभुशुण्डीजीने गरुड़जीको बताया :

निर्गुण रूप सुलभ अति, सगुन जान नहिं कोई।
सुगम अगम नाना चरित, सुनि मुनि-मन भ्रम होई॥

यही रामका 'रामत्व' है।

विकराल कलिकाल और रामनाम मणिदीप

श्री नागेश्वर सिंह 'शशीन्द्र', विद्यालंकार

★

भक्तिकाल हिंदी-साहित्यका मेरुदण्ड है और उस कालके सर्वाधिक प्रख्यात कवियोंमें तुलसीदास भी एक हैं। तुलसीका काव्य समस्त मानव-समुदायके लिए उन्मुक्त है। अपनी पवित्रताके कारण वह काव्य-जगत्‌में परम आदर्शमय है। आदर्श-चरित्र द्वारा उन्होंने विश्वकी मानवताका पथ-प्रदर्शन किया। महाकवि लारेंसने कहा है। 'प्रत्येक काव्य अपनी चरम परिणतिपर एक नये विश्वकी रचना करता है।' लारेंसकी यह उक्ति तुलसीपर कितनी सटीक घटती है! सचमुच तुलसीने अपने 'मानस-मधु-कोष' द्वारा विकराल कलिकालमें मानव-समुदायका बड़ा उपकार किया है। उन्होंने रामनामकी महिमाका अत्यन्त ही सुन्दर और विशद विवेचन किया है। उनके मतानुसार कलियुगसे बढ़कर दूसरा कोई युग नहीं। कलियुगमें जन्म लेनेवाले जीवोंका अहोभाग्य है कि उन्हें प्रभुने मानव-शरीर प्रदान किया :

कलियुग सम जुग आन नहिं, जो नर कर बिस्वास।
गाइ राम गुनगन-बिमल, भव तर बिनहिं प्रयास॥

आज सारा संसार घोर भौतिकवादी बना हुआ है। प्रत्येक व्यक्ति उदर-पोषणके कार्यमें इतना व्यस्त है कि उदात्त आदर्शों—दया, धर्म, प्रेम और सद्भावनासे वह काफी दूर चला आया है। उसका शरीर लोहेका और मन सीमेंटका बन गया है। कहीं आशा और विश्वासकी एक क्षीण रेखा भी नहीं दिखलायी देती। महाकवि बिहारीने इसी स्थितिकी ओर ध्यान रखकर लिखा है :

भजन कह्यो तासों भज्यो, भज्यो न एकौ बार।
दूर भजन जासों कह्यो, सो तू भज्यो गँवार॥

भगवान्‌का मधुर नाम रामनाम सच्चे अर्थमें मधुर है। प्राचीन ऋषियोंने भी इसे मधुर ही अनुभव किया। इसके बहुत-से प्रमाण सद्ग्रन्थोंमें भरे पड़े हैं। श्री'हनुमत्संहिता'में कहा गया है :

हे जिह्वे मधुरप्रिये सुमधुरं श्रीरामनामात्मकं
पीयूषं पिब प्रेमभक्तिमनसा हित्वा विवादानलम्।
जन्मव्याधिकषायकामशमनं रम्यातिरम्यं परं
श्रीगौरीशप्रियं सदैव सुभगं सर्वेश्वरं सौख्यदम्॥

श्री'रामरक्षास्तोत्र'में बुधकौशिक ऋषिने कहा है :

कूजन्तं राम रामेति मधुरं मधुराक्षरम् ।
आरुह्य कविताशाखां वन्दे वाल्मीकिकोकिलम् ॥

सचमुच 'रामनाम' इतना मनोमोहक और मधुर है कि उसे जपते-जपते स्वयं वाल्मीकि कोकिल हो गये ।

तुलसीदासजीने भी 'रामनाम' को मधुर नाम बतलाते हुए कहा है :

आखर मधुर मनोहर दोऊ । बरन विलोचन जन जिय जोऊ ॥
सुमिरत सुलभ सुखद सब काहू । लोक लाहु परलोक निबाहू ॥

'श्रीमद्भागवत'में भी भगवान्के यशोगान और भजनके सम्बन्धमें कहा गया है :

श्रवणं कीर्तनं चास्य स्मरणं महतां गतेः ।
सेवेज्यावनतिर्दास्यं सख्यमात्मसमर्पणम् ॥

भगवान्का अखण्ड भजन ही भक्तको वृत्ति है और वही भक्तिके लिए उच्च साधन है । देवर्षि नारद कहते हैं : अव्यावृत्तभजनात् ।

रामनामके स्मरणमात्रसे ही संसारकी सब आपत्तियाँ दूर हो जाती हैं और समस्त सुख-सम्पत्ति प्राप्त हो जाती है । कहा गया है :

भर्जनं भवबीजानामर्जनं सुखसम्पदाम् ।
तर्जनं यमदूतानां रामरामेति गर्जनम् ॥

रामनामकी महिमा अपार है । तुलसीदासजीका कथन है कि 'र' सब वर्णोंके मस्तकपर छत्रकी भ्रान्ति सुशोभित है और 'म' सब वर्णोंपर मुकुट-मणिके समान है :

एक छत्र इक मुकुटमनि, सब बरननपर जोउ ।
तुलसी रघुबर नामके बरन बिराजत दोउ ॥

यह रामनाम तो परम मंगलमय है :

नाम जपत मङ्गल दिसि दस हू ।

यह नाम ऐसा फलदायी और मङ्गलकारी है कि उल्टा-सीधा, जिस किसी रूपमें भी जपें, वह कदापि निष्फल नहीं जा सकता :

भाव कुभाव अनख आलसहू । नाम जपत मंगल दिसि दसहू ॥

रामके प्रतापसे किसका उद्धार नहीं हुआ ? किसको मुक्ति नहीं मिली ? :

अपतु अजामिलु गजु गनिकाऊ । भये मुकुत हरिनाम प्रभाऊ ॥

× × ×

सुमिरि पवनसुत पावन नामू। अपने बस करि राखे रामू॥

× × ×

उलटा नाम जपत जग जाना। बालमीकि भये ब्रह्म-समाना॥

यह नाम तो ऐसा है कि लोक, परलोक दोनों बना देता है। तुलसीदासजीने कहा है :

कहौं कहाँ लगि नाम बड़ाई। रामु न सकहिं नाम गुन गाई॥

तुलसीकी दृष्टिमें सबका सार-सिद्धान्त 'रामभजन' ही है :

श्रुति सिद्धान्त इहै उरगारी। राम भजिअ सब काज बिसारी॥
सिव अज सुक सनकादिक नारद। जे मुनि ब्रह्म-बिचार-बिसारद॥
सब कर मत खगनायक एहा। करिअ रामपद-पंकज नेहा॥

राम-नाम तो सभी मनोरथोंको पूर्ण करनेवाला 'पारस-मणि' है। उसके सामने दुनियाके सारे रिश्ते-नाते व्यर्थ हैं। राम-नाम ही एक सार है, एक सहारा है :

रामनाम अवलम्ब बिनु, परमारथ की आस।
बरसत वारिद बूँद गहि, चाहत चढ़न अकास॥

जीभकी सार्थकता तो इसीमें है कि सतत वह 'रामरस'का आस्वादन करे :

रामनाम बिनु गिरा न सोहा। देखु बिचारि त्यागि मद मोहा॥

मनुष्यका जीवन तभी कृतकृत्य है, जब वह रामनामरूपी मणिको धारणकर लोक-परलोक बना लेता है :

रामनाम-मनि दीप धरु, जीह देहरी द्वार।
तुलसी भीतर बाहेरहु, जो चाहसि उजियार॥

जिसने 'रामनामरूपी मणि'को अपने हृदयमें धारणकर लिया है, वही मनुष्य है और उसीका जीना सार्थक है :

रामभगति-मनि उर बस जाके। दुख लवलेस न सपनेहुं ताके॥
चतुर सिरोमनि तेइ जगमाहीं। जे मनि लागि सुजतन कराहीं॥

यह नाम तो ऐसा है कि प्रारब्धको भी मिटा सकता है :

मंत्र महामनि बिषय ब्यालके। मेटत कठिन कुअंक भालके॥

हमारा यह परम कर्तव्य है कि सतत भगवान्के नामका स्मरण करते रहें। हमारा तमसावृत आन्तरिक हृदय उस प्रभुकी अमल ज्योतिसे आलोकित हो उठेगा। वहाँ तो एकबार भी जो पहुँच जाता है, उसके जीवनकी काई ही मिट जाती है। वह परम पवित्र हो जाता है :

कलि पाखंड प्रचार प्रबल पाप पावर पतित।
तुलसी उभय अधार रामनाम सुरसरि-सलिल ॥

× × ×

रामनाम नित कहत, हर गावत वेद पुरान।
हरन अमंगल अघ अखिल करन सकल कल्यान ॥

नाम कामतरु काल-कराला। सुमिरत समन सकल जगजाला ॥
रामनाम कलि अभिमत दाता। हित परलोक लोक पितु माता ॥
नहिं कलि करम न भगति विवेकू। रामनाम अवलम्बन एकू ॥

'रामनाम'-जपके सम्बन्धमें तुलसीने साधिकार कहा है :

बहुमत सुनि बहु पंथ पुराननि जहाँ तहाँ झगरो सो।
गुरु कह्यो राम भजन नीको मोहि लागत राज डगरो सो ॥

इसको प्राप्त करनेका सुगम उपाय यही है कि हम उसी 'राजमार्ग' को अपना जीवन-पथ बनायें। सतत उसके नामकी रट लगाते चलें। अहर्निश उसी रामनामका स्मरण करते रहें। कबीरने भी क्या अच्छा कहा है।

जाके नाम न आवत हिये।
काह भये नर कासि बसेसे क्या गंगाजल पिये।
काह भये नर जटा बढ़ाये, का गुदरीके लिए ॥
काह भयो कंठी के बाँधे, काह तिलक के दिये।
कहत कबीर सुनो भाई साधो नाहक ऐसे जिये ॥

•

सात्त्विक सुख

जिस सुखमें साधक पुरुष भगवान्‌के भजन, ध्यान और सेवादिके अभ्यासमें रमण करता—आनन्द उठाता और जिससे दुःखोंके अन्तको प्राप्त हो जाता है। जो सुख प्रारम्भमें यद्यपि विषके तुल्य प्रतीत होता है, परन्तु परिणाममें अमृततुल्य है; अतएव वह आत्म-शुद्धिके प्रसादसे उत्पन्न होनेवाला सुख सात्त्विक कहा गया है।

(गीता १८.३६-३७)

मानसमें राम-राज्यका स्वरूप

श्री देवधर शर्मा

★

सन्त-शिरोमणि गोस्वामी तुलसीदासजीने अपने अमर ग्रन्थ रामचरित मानसकी रचनाका उद्देश्य 'स्वान्तःसुखाय' घोषित किया था। किन्तु ग्रन्थका प्रणयन पूर्ण होनेपर उसने न केवल गोस्वामी तुलसीदासके अन्तःकरणको ही आह्लादित किया, सच्चे अर्थोंमें लोक-मंगलका स्वरूप ग्रहणकर वह जन-जनके हृदयोंमें प्रतिष्ठित हो गया। यही कारण है कि आज हमारे देशकी धर्म-निरपेक्ष सरकार भी बड़े हर्ष और उल्लासके साथ उसका 'चतुःशती-महोत्सव' मना रही है।

पराधीनता समाप्त होनेके बाद जबसे भारतवर्षमें विश्वके सबसे बड़े लोकतन्त्रकी स्थापना हुई, तभीसे प्रशासनको स्वच्छ, सुन्दर और सर्वजनोपयोगी बनानेका प्रयास चल रहा है। किन्तु ज्यों-ज्यों सुरझि भजौ चहत त्यौं-त्यौं उरझौ जात वाली कहावत चरितार्थ हो रही है और उत्तरोत्तर अभाव एवं अशान्तिका साम्राज्य स्थापित होता जा रहा है। आश्चर्य इस बातका है कि यह अवस्था तब है, जब कि रामचरित-मानस जैसे सुलभ और सर्वप्रिय सद्ग्रन्थमें वर्णित रामराज्यका उदाहरण हमारे सामने है।

गोस्वामी तुलसीदासने रामचरित-मानसके उत्तरकाण्डमें रामराज्यका जो वर्णन किया है, वह बड़ा ही विशद, भावमय और भव्य है। वे लिखते हैं कि रामका राज्य-सिंहासनपर बैठना था कि तीनों लोकोंमें सुख-ही-सुख छा चला। सबके सारे दुःख दूर हो चले। न तो कोई किसीसे बैर करता था और न रामके प्रतापसे कहीं छोटे बड़े अथवा धनी रंकका भेद-भाव ही रह गया। सब लोग अपने-अपने वर्ण अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और आश्रम अर्थात् ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यासके कर्तव्योंका पालन करते हुए सदा वेद-वर्णित मार्गका अनुसरण करनेमें ही सुख मानते थे। उन्हें न किसी बातका भय था, न शोक था और न कोई रोग ही उन्हें सताता था। रामका राज्य इतना अच्छा था कि उसमें किसीको किसी प्रकारका दैहिक, दैविक और भौतिक ताप नहीं हो पाता था।

दैहिक, दैविक भौतिक तापा। रामराज्य नहिं काहुहि ब्यापा॥

सभी लोग मिल-जुलकर बड़े प्रेमसे रहते थे और अपने-अपने कर्तव्योंका पालन करते चलते थे। धर्मके चारों चरण सत्य, शौच, दया और दान उस समय सारे जगत्में प्रतिष्ठित हो गये थे। सब लोग सत्यनिष्ठ, पवित्र, दयालु और दानी बन चले थे। स्वप्नमें भी कहीं

पापका नामतक नहीं रह गया था। सभी स्त्री-पुरुष सदा रामकी ही भक्तिमें मग्न रहते थे। रामके राज्यमें न तो किसीकी छोटी अवस्थामें मृत्यु हो पाती थी और न किसीको कोई पीड़ा ही होती थी। सब लोग बड़े सुन्दर और स्वस्थ थे। न कोई दरिद्र रह गया था, न दुखी, न दीन, न मूर्ख और न शुभलक्षणोंसे हीन। किसीके मनमें दम्भका नामतक नहीं रह गया था। लोग बड़े धर्म-परायण, धर्मके अनुसार काम करनेवाले और पुण्यात्मा थे। सभी नर और नारी बड़े बुद्धिमान्, गुणी, गुणका आदर करनेवाले, पण्डित, विद्वान्, ज्ञानी और कृतज्ञ अर्थात् दूसरोंका उपकार माननेवाले थे। किसीके मनमें न कोई कपट था और न कोई धूर्तताकी भावना ही थी।

रामचरित-मानसमें काक-भुशुण्डिजी कहते हैं : 'देखो गरुड़, उस समय संसारमें जितने भी चर-अचर, जड़ और चेतन जीव थे, उन्हें काल, कर्म, स्वभाव और गुणोंसे उत्पन्न होनेवाला कोई भी बन्धन कभी बाँध नहीं पाता था। अयोध्यामें तो राम केवल सात समुद्रोंसे घिरी एक पृथ्वीमात्रके राजा थे, पर जिनके एक-एक रोममें अनेक ब्रह्माण्ड लिपटे पड़े रहते हों, उनके लिए सात द्वीपोंके राज्यकी प्रभुता ही किस गिनतीमें ? प्रभुकी वह ब्रह्मस्वरूप-वाली महिमा समझ लेनेपर यह कहना कि वे सप्तद्वीपपर्यन्त पृथ्वीके सम्राट् हैं, उनको बहुत छोटा बनाना होगा। किन्तु गरुड़, जिन्होंने यह महिमा जान ली कि वे साक्षात् ब्रह्म हैं, उन्हें भी प्रभुकी इसी सगुण-लीलामें बड़ा रस मिला करता है। क्योंकि उस महिमाको जाननेका फल भी इस सगुण-लीलाका रस-पान ही है।'

इन्द्रियोंका दमन करलेनेवाले श्रेष्ठ महामुनि कहते हैं कि 'रामके राज्यमें कितना सुख और ऐश्वर्य था, इसका वर्णन करना तो शेष और सरस्वतीके भी बूतेके बाहरकी बात है। राम राज्यमें जिसे देखो वही उदार, परोपकारी और ब्राह्मणोंके चरणोंका सेवक था। वहाँके सभी पुरुष एकपत्नी-व्रतका संकल्प लिये हुए थे। सभी स्त्रियाँ मन, वचन और कर्मसे सदा अपने ही पतियोंकी सेवा किया करती थीं। रामके राज्यमें दण्ड केवल संन्यासियोंके हाथमें रहता था अर्थात् किसीको दण्ड नहीं दिया जाता था। भेदका प्रयोग केवल नाचनेवालोंके नृत्य-समाजमें होता था, लोगोंमें भेद कोई नहीं था। 'जीतो' शब्द केवल मनको जीतनेके लिए ही सुनाई पड़ता था, किसी मनुष्य या देशको जीतनेके लिए नहीं। रामके राज्यमें वनके वृक्ष सदा फूलते-फलते रहते थे। हाथी और सिंह एक घाट पानी पीते थे। सब पशु और पक्षी अपना स्वाभाविक वैर छोड़कर आपसमें प्रेमसे रहते थे। पक्षी मस्त होकर वनमें आनन्दसे विचरते थे। वायु सदा शीतल, मंद और सुगन्धित बहती थी। भौंरे दिन-रात पुष्पोंका रस लेकर मँड़राते और गुनगुनाते रहते थे। लताएँ और वृक्ष ऐसे थे कि माँगते ही तुरंत मधु टपका दिया करते थे। गौएँ ऐसी थीं कि उनसे जब जितना चाहो, उतना दूध दुह लो। धरतीपर चारों ओर हरी-हरी खेती लहलहायी रहती थी।

इस प्रकार रामके राज्यकालीन त्रेतायुगमें भी सतयुगका प्रभाव दिखायी देने लगा। विश्वात्मा रामको ही जगत्का राजा समझकर पर्वतोंने मणियोंकी अनेक खानें खोल दिखायीं।' सभी नदियोंमें शीतल, निर्मल, स्वादिष्ट और सुखप्रद जल बहने लगा। समुद्र अपनी मर्यादामें

बँधा रहता हुआ भी अपनी लहरोंसे रत्न, मोती आदि उछाल-उछालकर तटपर बिखेर फेंकता था, जिन्हें मनुष्य आवश्यकतानुसार वहाँसे उठाकर उपयोगमें लाते रहते थे। सभी सरोवरोंमें कमल-ही-कमल दिखायी पड़ते थे। इस प्रकार जिधर देखो, उधर मस्ती-ही-मस्ती छायी हुई थी।

रामके राज्यमें चन्द्रमा अपनी अमृतमयी किरणें पृथ्वीपर बिखेरता रहता था। सूर्य उतना ही तपता था, जितना आवश्यक होता था और मेघ भी जब जितना जल माँगो, उतना ही बरसाते थे।

> बिधु महि पूर मयूखन्हि, रबि तप जेतनेहि काज।
> माँगे बारिद देहिं जल, रामचन्द्रके राज॥

यह व्यवस्था केवल रामके राज्यमें ही नहीं थी, उनके निजी भवनोंमें भी इसी प्रकारका भाव विद्यमान था। श्री सीताजी सैकड़ों दास-दासियोंके होते हुए भी घरका सारा काम-काज अपने हाथों ही सम्पन्न किया करती थीं। रामकी आज्ञाका पालन ही उनका एकमात्र कर्तव्य था। वे वनमें साथ रहकर जान गयीं कि बड़ोंकी सेवा कैसे की जाती है। अतः अयोध्यामें रहकर कौशल्या आदि सभी सासुओंकी भी सेवा मन लगाकर करती थीं। इससे उन्हें न किसी प्रकारका अभिमान था, न मद था, और न कोई झिझक थी। रामके सब भाई भी उनके अनुशासनमें रहते हुए सदा उनकी सेवा करते रहते थे। इसीलिए अयोध्याके नगरनिवासी दिन-रात प्रार्थना करते थे कि समस्त सद्गुणोंके धाम रामके चरणोंमें उनकी प्रीति सदा-सर्वदा बनी रहे और रामराज्य अनन्तकालतक स्थिर रहे।

यदि इस प्रकारका राज्य पृथ्वीपर स्थापित हो जाय, तो इससे बढ़कर प्रजाके सुख एवं शान्तिमय जीवनकी कल्पना और और क्या की जा सकती है? इसीलिए राष्ट्रपिता महात्मा गान्धीने 'स्वराज्य' की अपेक्षा 'सुराज्य' अथवा 'राम-राज्य' को ही अधिक श्रेष्ठ माना और वे भारतवर्षमें उसी प्रकारके राज्यकी कल्पना करते थे। इसमें कोई सन्देह नहीं कि यदि हम रामचरित-मानसमें वर्णित रामराज्यको अपना आदर्श मान लें और पूरी निष्ठाके साथ उसे अपने जीवन और समाजमें उतारनेका प्रयास करें, तो हमारी वर्तमान कठिनाइयोंका अन्त हो जायगा और हम समुन्नतिके शिखरपर पहुँच जायँगे।

('आकाशवाणी, मथुरा' के सौजन्यसे)
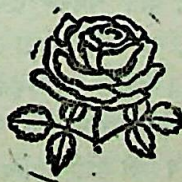
शरीरका संस्कार और वेष

आचार्य श्रीरघुनाथ शास्त्री

★

संसारमें वेष ही ऐसा आधार है जिसके द्वारा देश, शील, कर्म, जीविका, सम्पत्ति, वर्ण (जाति), आश्रम, पुरुषत्व, स्त्रीत्व आदि बिना बताये जान लिया जाता है। यहाँ तक कि वेष देखकर ही अन्य जीव भी लोगोंपर विश्वास करके पास आनेपर डरकर दूर हट जाते हैं। वेष ही स्त्री तथा पुरुषोंके भेदका द्योतक है। स्त्री-पुरुषोंमें परस्पर प्रेमभाव उत्पन्न करानेमें वेष ही प्रधान कारण है जैसा कि गणिका-पुत्रने कहा है। वात्स्यायनके कामशास्त्रके पंचम अधिकरणके प्रथम अध्यायमें स्त्री एवं पुरुषके शीलका विचार करते हुए कहा गया है कि स्त्री किसी भी उज्ज्वलवेषधारी (सुन्दर वेशवाले) पुरुषको देखकर प्रभावित होती है और पुरुष भी ऐसी स्त्रीको देखकर प्रभावित होता है। यह प्रवृत्ति अन्य किसी कारणसे नहीं होती। तात्पर्य यह कि कोई स्त्री उज्ज्वल वर्ण तथा वेषके कारण ही स्वकीय (अपने) एवं परकीय (पराये) पुरुषकी ओर आकृष्ट होती है, और पुरुष भी स्त्रीकी उज्ज्वल सुन्दर वेश-भूषा और रूप-रंग देखकर ही उसकी ओर आकृष्ट होता है। ऐसा नहीं कि कोई काम पड़नेपर ही परस्पर आकर्षण होता हो। मनुने भी कहा है। 'वेषके रुचिकर न होनेपर कुल भी आगे नहीं बढ़ पाता।' एक दूसरे स्थानपर भी कहा गया है कि 'यदि अपने पास सम्पत्ति हो, तो फटे-पुराने एवं गन्दे वस्त्र नहीं धारण करने चाहिए।'

वेष, नेपथ्य तथा भूमिका इन सबका अर्थ एक ही है। यद्यपि जीविका चलाने और शरीरकी रक्षा करनेके लिए वेषका प्रयोग होता है, किन्तु उसका मूल लक्ष्य स्वास्थ्य-रक्षा ही है। चरक-संहितामें सूत्रस्थानके पंचम अध्यायमें (७१ से १०३ श्लोकतक) स्वास्थ्य-रक्षाके नियम बतलाते हुए वेषके सम्बन्धमें लिखा है :

प्रतिदिन प्रातः सायं चिकने सिरवाले कसैले, कड़वे (नीमके समान) तथा तिक्त दातनोंसे मसूड़ोंको बचाते हुए दाँत मलने चाहिए। इससे मुँहकी दुर्गन्ध, विरसता, जीभ, दाँत तथा मुँहका मैल दूर होता है, दाँत चमकने लगते हैं और भोजनमें रुचि बढ़ती है। दातौनके लिए करंज, कनैर, मदार, मालती, कहवा तथा असन या अन्य दूधवाले पेड़ोंकी टहनियाँ अधिक लाभदायक होती हैं। दातौन कर चुकनेपर सोने-चाँदी; ताँबे, पीतल आदिकी जीभीसे जीभ छील लेनी चाहिए। इससे जीभ, कण्ठ और जिह्वामूलका सारा मैल दूर हो जाता है। यदि जीभ न छीली जाय तो मुखमें दुर्गन्ध आने लगती है और श्वासके सहारे

बहुतसे कीटाणु फेफड़ेतक पहुँच जाते हैं। मुखको सुगन्धित और स्वस्थ रखनेके लिए जायफल, सुपारी, लौंग, कंकोल और ताम्बूल, कपूरका सत और छोटी इलायची मुखमें धारण करनी चाहिए। इनके सेवनसे मुखका जबड़ा बलवान् होता है, स्वर शुद्ध होता है, रसोंका ठीक ज्ञान होता है, भोजनमें रुचि बढ़ती है, कण्ठ सूखने नहीं पाता, ओठ चिकने रहते हैं, दाँत शीघ्र नहीं गिरने पाते और उनकी जड़ें पक्की हो जाती हैं। इसी प्रकार मुँहमें तेल भरकर कुल्ला करनेसे भी दाँत पक्के होते हैं और आँखोंकी ज्योति बढ़ती है।

'जो व्यक्ति प्रतिदिन सिरमें तेल मलता है उसका सिर नहीं सूखता, बालोंकी जड़ें पक्की होती हैं। वे लम्बे, काले और घुँघराले होते चलते हैं, उनमें श्वेतता नहीं आती, वे गिरते नहीं। मुँहका चमड़ा कोमल होता है, समस्त इन्द्रियाँ प्रसन्न हो जाती हैं और नींद भी गहरी आती है। प्रतिदिन कानोंमें तेल छोड़नेसे कानोंमें जलवायुके विकार नहीं उत्पन्न होते। माथा, सिर तथा जबड़ोंमें जकड़ नहीं होती। धीरेसे कही हुई बात भी सुनायी पड़ जाती है और कान बहरे नहीं होते।

'जैसे तेल मलते-मलते चमड़ेका कुप्पा चिकना और पक्का हो जाता है, वैसे ही तेल मलनेसे शरीरकी खाल कोमल और सुन्दर हो जाती है, शरीर दृढ़ होता है वायुका प्रधान गुण स्पर्श है। वह स्पर्श त्वचाके द्वारा मिल जाता है। उस त्वचाकी सुरक्षा तेल मलनेसे ही होती है, अतः तैलाभ्यंग परमावश्यक है। तेल-मर्दनसे शरीरपर चोटका भी प्रभाव नहीं होता। अभ्यंगसे शरीरमें कोई विकार नहीं आने पाते। देहमें चिकनाहट तथा दृढ़ता आती है, सुन्दरता बढ़ती है, बुढ़ापेका आक्रमण नहीं होता। रूक्षता, जकड़ाहट, खरखराहट तथा थकावट आदि नहीं होती। पैरोंमें तेल-मालिश करनेसे थकावट नहीं होती, पैरोंमें कोमलता तथा स्थिरता आती है, बल-वृद्धि होती है, आँखोंकी ज्योति बढ़ती है, वायु शान्त होता है। पैरोंमें बाय नहीं होता, स्फुटन नहीं होता और शिराओं तथा स्नायुओंमें संकोच नहीं होता।

पानीसे शरीर धो लेनेपर दुर्गन्ध, भारीपन, तन्द्रा, खुजली, मैल, अरुचि, पसीना, शारीरिक दुर्लक्षण सब नष्ट हो जाते हैं। प्रतिदिन स्नान करनेवाले पुरुषमें पवित्रता आती है, बल बढ़ता, आयुकी वृद्धि होती है। थकावट, पसीना आदि दूर हो जाते हैं, शरीरका बल स्थिर होता है और ओजकी अभिवृद्धि होती है।

पैर तथा मल-मार्ग धोनेसे शरीर पवित्र रहता, बुद्धि एवं आयुकी वृद्धि होती है। दरिद्रता और कलह दूर होते हैं। बाल तथा नख समय-समयपर कटवाते रहनेसे प्रसन्नता और बुद्धि बढ़ती है, शरीर पवित्र रहता है, आयु-शक्ति प्राप्त होती है।

इसी प्रकार निर्मल वस्त्र धारण करनेसे सौन्दर्यकी वृद्धि, यशकी प्राप्ति, दरिद्रताका विनाश एवं प्रसन्नता आती है। सुगन्धित फूलोंकी माला धारण करनेसे सौन्दर्य, प्रसन्नता, आयु एवं बलकी वृद्धि होती है और कंगालीका विनाश होता है। रत्नाभरण धारण करनेसे मनुष्य पूजित होता है, मंगल, आयु एवं लक्ष्मीकी वृद्धि होती है, समस्त आपत्तियाँ दूर होती हैं, प्रसन्नता, सौन्दर्य और ओज बढ़ता है। पैरोंमें जूते पहननेसे आँखोंकी ज्योति बढ़ती है,

पैरोंमें कोई बाधा नहीं आती, स्पर्श करनेसे भी लाभ पहुँचता है, बल मिलता है, दौड़-कूदमें सहायता मिलती है तथा वीर्य पुष्ट होता है। छाता लगानेसे धूप और लू नहीं लगती, बलकी वृद्धि होती है, शरीरकी रक्षा होती है, वायु तथा वर्षादिके भयंकर वेगसे त्राण होता है।

दण्ड धारण करनेसे मनुष्य गिरने-पड़नेसे बचता है, शत्रुओंका विनाश करता है, शरीरकी शक्ति बनी रहती है, आयु बढ़ती है और समस्त भय दूर रहते हैं। जिस प्रकार किसी नगरका स्वामी बड़ी सावधानीसे अपने नगरकी रक्षा करता है तथा रथवान् बड़ी सावधानीसे रथकी रक्षा करता है, वैसे ही प्रत्येक बुद्धिमान् मनुष्यको बड़ी ही सावधानीसे अपने शरीरकी रक्षा करनी चाहिए।

भिन्न-भिन्न देशोंमें वहाँके जलवायुके अनुकूल लोग ऐसा वेष धारण करते हैं जो सर्दी, हवा और धूपसे बचा सके। वस्त्र हमारे शरीरको ढँककर ठीक उसी प्रकार शरीरकी रक्षा करते हैं, जिस प्रकार वृक्षोंकी सहजात पत्तियाँ उनकी रक्षा करती हैं। यदि पत्तियाँ न रहें तो वह वृक्ष जड़सहित नष्ट हो जाता है। अतः किसी भी देशके निवासीको अपने देशके जलवायुके अनुकूल ही वेष धारण करना चाहिए, किसी दूसरे देशका अनुकरण नहीं करना चाहिए, क्योंकि इस प्रकार शरीर-रक्षा भलीभाँति सम्भव नहीं। इसीलिए यह लोकोक्ति प्रचलित हो गयी है : 'जैसा देश वैसा भेष'। हिमालयकी तराई जैसे शीतल प्रदेशमें रहनेवालों तथा मारवाड़के गरम प्रदेशमें रहनेवालोंके लिए एक ही वेष हितकर नहीं हो सकता। अन्य देशवासियोंके वेषका अनुकरण करनेसे लोकमें सम्मान भी नहीं प्राप्त होता।

●

त्रिविध पुरुष

इस संसारमें दो प्रकारके पुरुष हैं क्षर अक्षर (नाशवान् और अविनाशी)। इनमें समस्त भूत-प्राणियोंके शरीर तो क्षर (नाशवान्) हैं और जीवात्मा अक्षर (अविनाशी) है। इन दोनोंसे उत्तम पुरुष तो कोई और ही है, जो तीनों लोकोंमें व्याप्त होकर सबका भरण पोषण करता है। उसीको अविनाशी परमेश्वर कहते हैं! (वह मैं ही हूँ)। मैं क्षर (नाशवान् जडवर्ग) से सर्वथा अतीत हूँ और अविनाशी अक्षर—जीवात्मासे भी उत्तम हूँ, इसलिए लोक और वेदमें भी पुरुषोत्तम नामसे प्रसिद्ध हूँ।

(गीता १५.१६–१८)

व्यसन और विवेक

श्री बाबूलाल 'श्रीमयङ्क'

व्यसन कोई स्थिर वस्तु नहीं है। एक छूटता है, तो दूसरा बढ़ता है। इस प्रकार हम कई व्यसनोंके दौरसे गुजरते रहते हैं। इन सब व्यसनोंमें सबसे तीव्र इच्छा केवल सुखकी रहती है। इसलिए एकको पकड़ा जाता है, तो एकको उसके लालचमें छोड़ा भी जाता है। कोई व्यसन अच्छा भी है, तो कोई बुरा भी।

व्यसनमें तभीतक सुख रहता है, जबतक कि उसमें रुचि बनी रहती है। रुचिके हटते ही वह भाररूप हो जाता है। इसलिए व्यसनमें रुचिकी प्रधानता रहती है।

इस रुचिके साथ यदि विवेक भी हो, तो व्यसनके परिणामोंसे लाभ उठाया जा सकता है अथवा बचा जा सकता है। बाधा तो तब आती है, जब यह रुचि किसी एक ही प्रकारके सुखसे चिपट जाती है और विवेक खो देती है। मन विवेकको प्रधानता न देकर केवल रुचिका ही अनुसरण करता है। परिणाम यह होता है कि मनुष्य एक ही व्यसनमें लिप्त होकर दुःखी और आश्रयहीन हो जाता है।

किसी भी व्यसनको ग्रहण करते समय यह देखा जाय कि उससे मिलनेवाला सुख कितनी देरतक स्थायी रह सकता है। उससे कितनी उन्नतिकी सम्भावना रहती है, आत्मिक उत्थान कहांतक हो सकता है, नैतिक आचरणोंको कहांतक बल मिल सकता है और उच्च-कोटिका सामाजिक-जीवन यापन करनेमें कहांतक सहायता मिल सकती है? व्यसन जीवनका मापदण्ड होता है। उन्नति-अवनतिका प्रतीक भी होता है। कोई-सा भी कर्म और उसके प्रति मोहाकर्षण व्यसनकी श्रेणीमें आता है।

ठीक इन्हीं बातोंको ध्यानमें रखते हुए विवेकके सुदीर्घ मार्गपर सुखकी सुरम्यतामें एक नहीं, कई व्यसन पकड़ने पड़े तो पकड़िये और उन्हें छोड़ना पड़े तो छोड़िये। जितना ध्यान व्यसनपर रहता है, उससे भी अधिक विवेकसे उसके द्वारा प्राप्य स्थायी सुखकी खोजपर होना चाहिए। व्यसन पड़नेके बाद अक्सर यह देखा जाता है कि वह एक भयानक आदतके रूपमें बदल जाता है और सुखका नितान्त अभाव-सा हो जाता है। उदाहरणार्थ, सिगरेट आरम्भमें सुख और शौकके लिए पी जाती है, पर वह अन्तमें आदतमें बदलकर केवल भाररूप हो जाती है। बादमें उसके परिणाम भी अच्छे नहीं निकलते। कफ, दमा आदि रोग आक्रमण कर देते हैं। कोई भी दुर्व्यसन ४० सालके बाद ही ठीक तौरपर अपने दुष्परिणाम बताता है। फिर भी जीवनकी यन्त्रगामी गति उसे छोड़ नहीं पाती। दुर्व्यसन जितना खतरनाक होता है, उतना ही सुव्यसन सुखमय जीवनका हेतु।

व्यसनके साथ विवेकका इतना-सा काम है कि वह उसको अनासक्त भावसे ग्रहण कर मोहाकर्षणसे दूर एवं चौकन्ना रहे। थोड़ी-सी भूल भी भयानक ग्रन्थि बन सकती है। जैसे ही वह भार रूप प्रतीत होने लगे, चिपटनेके बजाय शीघ्र ही उसे त्याग दें। यदि व्यसन अच्छा है, तृप्तिदायक, आनन्ददायक है तो उसे विश्राम देते हुए आदतमें ढालना चाहिए।

याद रखें ! आनन्द और सुखमें बड़ा अन्तर है। सुख तो बाह्य भौतिक वस्तुओंसे प्राप्त होता है, किन्तु आनन्द तो आन्तरिक चीज है, जो केवल आत्मासे ही प्राप्त हो सकता है। इसलिए ऐसा व्यसन ग्रहण करना चाहिए, जो अन्तर्बाह्य जीवनका ठीक-ठीक समन्वय कर सके। निदान उस व्यसनका सुख यानी परम सुख (आनन्द)में बदल जायगा, जो आजीवन स्थायी रहेगा।

व्यसन कोई भी हो सकता है। व्यसनोंसे सारी दुनिया भरी पड़ी है। व्यसन अपनी पसन्दका ही हो सकता है। इसमें अच्छी-बुरी वस्तुएँ भी सम्मिलितकी जा सकती हैं। सुख प्राप्त करनेके कई माध्यम हो सकते हैं, पर आनन्द नामकी वस्तु तो बड़ी दुर्लभ होती है, जिसे प्राप्त करना भी टेढ़ी खीर है। वह संयम तपस्या एवं कई साधनोंसे प्राप्त होता है। जो इस व्यसनमें पड़ता है, वह फिर उसे छोड़ता भी नहीं। जिन महापुरुषोंने इस आनन्दका स्वाद चखा है, उसकी अनुभूति ली है, उसका साक्षात्कार किया है, वे केवल यही कहते हैं कि आत्मज्ञानके व्यसनसे बढ़कर कोई भी श्रेष्ठ व्यसन नहीं है।

आत्मज्ञानका तात्पर्य है 'अपने आपको जानना।' जो अपनेको जानता है, उसने सब कुछ जान लिया है। अन्य ज्ञानकी आवश्यकता नहीं। उसके पास अन्य ज्ञान तो स्वयमेव चले आयेंगे।

जब मनुष्य निजके स्वरूपमें यह जान लेता है कि आत्मा ही सर्वत्र व्याप्त, कर्ता, भोक्ता है, तो उसके सभी कर्मोका अधिष्ठाता भी वही हो जाता है। उसके परिणामोंपर—हानिलाभ, सुख-दु:ख रागद्वेष परसे उसका अधिकार उठ जाता है। उसके उपयोगका अधिकारी वह नहीं रहता है। जब वह इनसे परे हो जाता है तब वही उसका आनन्द है। द्वन्द्वोंसे अतीत होना ही आनन्दकी अवस्था है।

वस्तुतः यह एक ऐसी अवस्था है, जिसमें सभी व्यसन चाहे वे कैसे भी बाहरी हों अथवा आन्तरिक, उस आत्मरूप प्रभुकी सेवामें समर्पित हो जाते हैं।

जबतक इस प्रकारका नित्य सुख (आनन्द) प्राप्त न हो, तबतक उसे प्राप्त करनेके लिए कोई भी व्यसन अपना सकते हैं। जैसे : सेवा, ईश्वरचिन्तन, सत्कर्म, लिखना, हल चलाना, व्यापार, नौकरी आदि। कोई भी व्यसन हो उसमें असीम आनन्द छिपा है। लेकिन उसको प्राप्त करनेकी क्षमता हममें नहीं है। यह क्षमता केवल आत्मज्ञानसे ही प्राप्त हो सकती है।

अतः व्यसन अपने आपमें बुरा नहीं होता, बल्कि विवेक-हीनताके कारण हमारी रुचि उससे चिपट कर दु:खका हेतु बनती है। रुचिके साथ पर्याप्त विवेक हो, जो निष्पक्ष निर्णय देकर हमारी स्थितिको समत्वपर स्थित कर दे, तो वह व्यसन सुखका ही नहीं, आनन्दका भी हेतु बन जाता है। फिर वह भौतिक हो या अभौतिक, आन्तरिक हो या बाह्य, व्यसन और उसके सुख-दुःखसे परे जाना ही गीतामें 'योग' नामसे कहा गया है : **समत्वं योग उच्यते।**

इसलिए व्यसनके साथ विवेक हो। यह विवेक ही इन व्यसनोंमें से उस आनन्दको खोज लेगा, जो जीवनका चरम लक्ष्य है।

इस असीम आनन्दको ही आलंकारिक शब्दोंमें मुक्ति, साक्षात्कार, परमसुख, नित्यानन्द आदि कह सकते हैं।

●

योगदर्शनमें जीवन तथा मृत्यु

एक चिन्तक

☆

भगवान् कृष्णका वचन है : "उत्पन्न होनेवालेकी मृत्यु एवं मृतकी उत्पत्ति ध्रुव है। यह अपरिहार्य तथ्य है, अतः इस विषयमें शोक नहीं करना चाहिए।"[1] अनादि कालसे भारतीय मनीषी इस अनिवार्य सत्यके मूल कारणके अन्वेषणमें तत्पर रहा है और इस क्षेत्रमें उसे आशातीत सफलता मिली है। महर्षि पतञ्जलिने—जिन्होंने चित्त, वाक् एवं शरीर तीनोंके मलापसारणपर समान रूपसे सफल अन्वेषण किया था—इस जन्म एवं मृत्युके ऊपर विजय प्राप्त करनेका मार्ग बताया। आपाततः यह सृष्टि सुख, दुःख एवं मोहमयी है। किन्तु सूक्ष्म दृष्टिसे विचार करनेपर यहाँ 'सुख' नामकी कोई वस्तु नहीं है; बल्कि सब दुःख ही दुःख हैं। जो वस्तु आपाततः सुखकारक मालूम पड़ती है, वह भी परिणाममें दुःखावह है :

परिणाम-ताप-संस्कार-दुःखैर्गुणवृत्तिविरोधाच्च दुःखमेव सर्वं विवेकिनः॥

—योगसूत्र २. १५

किन्तु हम इस सृष्टिको सुखोपघायक समझते हैं। इसके मूलमें है अविद्या। अविद्याका तात्पर्य है, अनित्य, अपवित्र, दुःखकारक एवं अनात्म-वस्तुओंको नित्य, पवित्र, सुखदायक एवं आत्मवस्तु समझना। इस अविद्याके कारण अस्मिता अर्थात् अकर्ता, अभोक्ता आत्माको कर्ता भोक्तापनका अभिमान उत्पन्न होता है :

ईश्वरोऽहमहं भोगी सिद्धोऽहं बलवान् सुखी······। (गीता १६।१४–१५)

अस्मितासे राग, रागसे द्वेष एवं उससे फिर अभिनिवेश अर्थात् मृत्युका भय उत्पन्न होता है :

अविद्या
↓
अस्मिता
↓
राग
↓
द्वेष
↓
अभिनिवेश

---
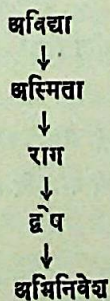
१. जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च।
तस्मादपरिहार्येऽर्थे न त्वं शोचितुमर्हसि॥ (गीता २।२७)

ये उपर्युक्त पाँच क्लेश हैं। इन क्लेशोंके कारण पूर्वकर्मोंसे होनेवाले कर्माशय अर्थात् कर्मसंस्कार फल प्रदान करते हैं। सति मूले तद्विपाको जात्यायुर्भोगाः। (यो० सू० २.१३)

जिस प्रकार तुषसे संलग्न वे चावल, जिनको भूँजा नहीं दिया गया है, अंकुर उत्पन्न करनेमें समर्थ होते हैं, उसी प्रकार वे कर्मसंस्कार—जो कि क्लेशोंके साथ वर्तमान हैं तथा ज्ञानाग्निसे जिनकी फलप्रजनन-सामर्थ्य दग्ध नहीं कर दी गयी है—जन्म, आयु तथा सुख-दुःखानुभूतिरूप भोग प्रदान करते हैं। इस सुखाद्यनुभूतिसे एक अनुभवात्मक संस्कार उत्पन्न होता है, जिसे दूसरे शब्दोंमें हम 'वासना' कहते हैं। इस वासनाके कारण उन सुखादिकी स्मृतिसे राग, (Attachmeat) और रागसे प्रवृत्तिमें (Physical effost) पैदा होते हैं। फिर उस प्रवृत्तिमें किसीका इष्ट होनेसे धर्म और अनिष्ट होनेसे अधर्म अर्थात् कर्मात्मक संस्कार या कर्माशय बनते हैं। इन कर्माशयोंसे जातिके पश्चात् आयु और भोग प्राप्त होते हैं :
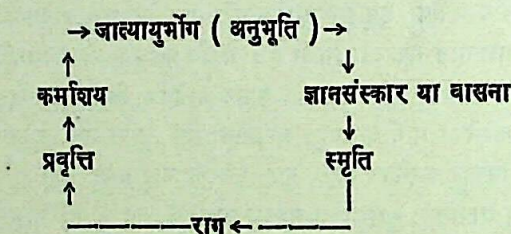
इस प्रकार यह चक्र अनादि कालसे चलता आ रहा है। इससे यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि जन्मके मूलमें कर्माशय है। इसी प्रकार मृत्युके भी मूलमें कर्माशय ही है। कर्माशयकी उत्पत्ति कर्मसे है और इस कर्माशयका नाश भी कर्मसे ही होता है। अतः कर्मोंपर एक विहंगम दृष्टि डालना अप्रासंगिक न होगा।

यह जीव जाने-अनजाने चार प्रकारके कर्म करता है :
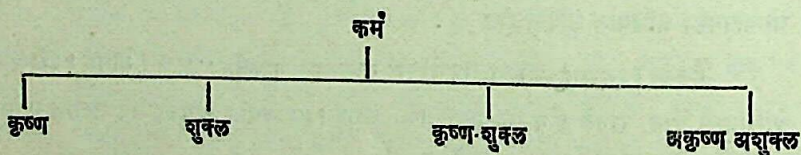
(१) कृष्ण : यह पापकर्म है। पापी लोग हिंसा, चोरी व्यभिचार आदिमें आसक्त रहकर उक्त कर्मको करते हैं :

तत्र कृष्णा दुरात्मनाम्। (यो० सू० भा० ४.७.)।

(२) शुक्ल : तप, स्वाध्याय, जप, ध्यान आदि करनेवाले तपस्वी लोगोंके कर्मोंको शुक्ल कहा गया है :

शुक्लाः तपःस्वाध्यायध्यानवताम्। (यो० सू० भा० ४.७)

(३) शुक्ल-कृष्ण : जो लोग दूसरोंपर दया, दूसरोंका उपकार आदि करते हैं, किन्तु साथ ही स्वार्थवश कुछ लोगोंको पीड़ा भी देते हैं, उनके कर्म शुक्ल-कृष्ण कहे जाते हैं।

शुक्ल-कृष्णा बहिःसाधनसाध्या। (यो० सू० भा० ४.७.)

(४) अकृष्ण-अशुक्ल : कर्म उन संन्यासियों या ज्ञानयोगियोंके होते हैं, जिनके क्लेश क्षीण हो गये हैं और जिनका देह धारण अन्तिम है।

अशुक्लकृष्णाः संन्यासिनाम्, क्षीणक्लेशानां चरमदेहानाम्।
(यो० सू० भा० ४. ७.)

यह चतुर्थ प्रकारका कर्म ऐसा है, जिसके करनेसे जन्म-मृत्युके चक्रसे मुक्ति मिलती है। शेष तीन प्रकारके कर्मोंवालोंको इस चक्रसे मुक्ति नहीं मिलती :

अयुक्तः कामकारेण फले सक्तो निबध्यते। (गीता ५।१२)

अर्थात् अयोगयुक्त (सकाम) पुरुष फलासक्त होनेके कारण संसारपाशमें बँधा रहता है।

प्रथम तीन प्रकारके कर्म करनेवाले व्यक्ति आवागमनके चक्करमें फँसते हैं। इन्हीं तीनों प्रकारके कर्मोंके फलस्वरूप ही जाति, आयु और भोग मिलते हैं। योगियोंको छोड़कर सकाम पुरुष फल-प्राप्तिकी वासनासे कर्म करते हैं। कर्मोंके अनुसार ही उनके फलोंके अनुकूल गुणोंवाली वासनाएँ उत्पन्न होती हैं। उन वासनाओंके अनुरूप कर्म और फिर उसी प्रकारकी वासनाएँ बनती रहती हैं। ये वासनाएँ चित्तमें दो प्रकारके संस्कारोंके रूपमें रहती हैं : एक वासना स्मृतिमात्र फलवाली होती हैं, तो दूसरी वासना जाति, आयु और भोग पदार्थोत्पादक होती है। जब कोई कर्मसमूह फलोन्मुख होता है तो उस फलके अनुकूल सहायता करनेके लिए वैसी सारी वासनाएँ प्रकट हो जाती है। उदाहरणार्थ : मनुष्य-जन्मको देनेवाले कर्म जब मनुष्य-जन्म लेनेके लिए उन्मुख होते हैं, तो चित्तमें पड़ी मनुष्यके जन्म-आयु और भोग-वाली संस्कारात्मक वासनाओंको स्मृति-फलवाली वासनाएँ जगा देती हैं। इसके अतिरिक्त अन्य योनि बिडाल, मूषक आदिकी—जाति, आयु और भोगरूप फल देनेवाली वासनाएँ चित्त-भूमिमें दबी रहती हैं। इसी प्रकार यदि पशु जन्म, आयु और भोग देनेवाले कर्म फलोन्मुख होते हैं, तो उस जाति, आयु और भोगकी वासनाओंको स्मृति-फलवाली वासनाएँ जगा देती हैं और वे अपना फल देने लगती हैं।

जाति, देश और कालका निकट होना वासनाओंके संस्कारोंके प्रकट होनेका कारण नहीं है। प्रत्युत उन्हें प्रकट करनेवाला कारण उनका अपना अपना अभिव्यञ्जक होता है। सैकड़ों जन्मोंके पूर्वकी भी वासनाएँ अपने अभिव्यञ्जकके मिलनेपर शीघ्रातिशीघ्र प्रकट हो जाती हैं। उदाहरणके लिए यदि किसी मनुष्यको कर्मविपाकानुसार पशुयोनिमें जाना हो, तो जन्म-जन्मान्तरोंकी चित्तमें पड़ी पशुयोनिकी सभी वासनाओंके संस्कार, जो उस जातिके बनाने-वाले अथवा उस पशुयोनिमें भोगे जानेवाले हैं, अपने अभिव्यञ्जकको पाकर प्रकट हो जाते हैं।

ये वासनाएँ अनादि होनेके कारण अनादि जन्मकी नियामिका हैं, जैसा कि कहा गया है। तासामनादित्वं चाशिषो नित्यत्वात् (४.१०)। अपने कल्याणकी इच्छा नित्य रहनेसे वासनाएँ भी अनादि हैं। 'ऐसा न हो कि मैं न रहूँ, किन्तु बना रहूँ' यह आशिष प्रत्येक प्राणीमें रहता है। मरण-दुःखका अनुभव न करनेवाला नवजात प्राणी भी मरणके भयसे कंपित

रहता है। स्वाभाविक वस्तु निमित्ताश्रय नहीं होती : **न च स्वाभाविकं वस्तु निमित्त-मुपादत्ते** (व्या० भा०)। इसी कारण अनादि वासनाओंसे बँधा यह चित्त निमित्तके वश किसी वासनाको प्राप्त कर पुरुषको गोत्र एवं आयु प्राप्त कराता है।

इन वासनाओंके मूलमें अविद्या है। अस्मिता, राग, द्वेष एवं अभिनिवेशके उत्पत्तिक्षेत्र अविद्या-रूप क्लेशके कारण मनुष्य कर्म करता है, फिर उन कर्मोंके अनुसार वासनाएँ बनती हैं जो जन्म, आयु एवं भोगकी कारणीभूत हैं।

प्रश्न उठता है कि मनुष्य अनेक प्रकारके कर्म करता है तो किन कर्मोंसे उसे जाति, आयु और भोग मिलते हैं ? क्या एक ही कर्म अनेक जन्मोंका कारण है अथवा अनेक कर्म एक जन्मके कारण ? दूसरा विकल्प यह हो सकता है कि अनेक कर्म अनेक जन्मोंके कारण हैं या प्रत्येक कर्म प्रत्येक जन्मका कारण ?

प्रत्येक कर्म प्रत्येक जन्मका कारण नहीं हो सकता। मान लीजिये, किसीने एक जन्ममें क, ख, ग, घ कर्म किया। अगले जन्ममें क कर्मसे जन्म हुआ ख, ग, कर्म बचे रहे। फिर दूसरे जन्मके होनेवाले च, छ, ज, झ, कर्मोंमेंसे च ने तोसरा जन्म दिया। इस प्रकार पूर्वके कर्म कब अपना फल देंगे, कहा नहीं जा सकता। इसलिए यह पक्ष अयुक्तिपूर्ण है।

दूसरा विकल्प एक कर्म अनेक जन्मोंका कारण है, अत्यन्त हास्यास्पद है। 'एक जन्ममें असंख्य कार्य होते रहते हैं। जब एक ही कर्म अनेक जन्मोंका कारण है तो अन्य कर्मोंके अवशिष्ट रहनेसे बड़ी ही अव्यवस्था हो जायगी।

तीसरा विकल्प कि अनेक कर्मोंसे अनेक जन्म होना ठीक नहीं; क्योंकि अनेक जन्म एक साथ ही नहीं हो सकते। एक ही मनुष्य मरकर एक साथ ही बन्दर, हाथी और चींटाके भोग कैसे भोग सकेगा ?

इस प्रकार तीनों विकल्प व्यर्थ होनेपर चतुर्थ विकल्प यह है कि अनेक कर्माशय केवल एक जन्म देते हैं। वर्तमान समयमें पूर्व-जन्मके प्रारब्ध-कर्मोंका ही फलभोग होता है। इस कारण वर्तमान समयमें क्रियमाण कर्म वर्तमान कालमें फल नहीं दे पाते। इसलिए पुण्य या अपुण्य कर्म प्रधानोपसर्जनभावसे मृत्युके समय उपस्थित हो जाते हैं। सभी कर्म जन्मके कारण नहीं होते, कुछ ही कर्म प्रधान रूपसे उपस्थित होकर मृत्यु प्रदान कर अग्रिम जन्म, आयु और भोग प्रदान करते हैं। यह शंका नहीं करनी चाहिए कि कर्म जन्मके कारण कैसे होते हैं, जब कि वे सद्यः नष्ट हो जाते हैं। कारण वासनाएँ तो चित्तमें रहती ही हैं जो जन्म-मृत्युकी कारण बनती हैं।

जिस प्रकार चुम्बक पत्थर लोहको अपनी ओर आकृष्ट कर लेता है, उसी प्रकार कर्माशय भावी जन्मको अपनी ओर खींचकर उपस्थित हो जाता है। व्यक्ति जिस-जिस भावका स्मरण करता हुआ शरीर त्यागता है उसी-उसी योनिमें उसका जन्म होता है :

> यं यं वापि स्मरन् भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम्।
> तं तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भावभावितः॥
>
> (गीता ८।६)

श्रुति भी कहती है।

'कामान् यः कामयते मन्यमानः
स कामभिर्जायते तत्र तत्र।........

अर्थात् (कर्माशयवश) मनुष्य जिन-जिन कामनाओंका स्मरण करता हुआ शरीर त्यागता है, उन्हीं वासनाओंके अनुसार जन्म ग्रहण करता है।

इस प्रकार विचार करनेपर यही ज्ञात होता है कि कर्माशय ही जन्म एवं मृत्युका कारण है।

अविद्याजनित कर्मके दो स्वरूप होते हैं। एक प्रधानरूप, दूसरा उपसर्जनरूप। प्रधान कर्माशय ही मृत्यु प्रदानका अग्रिम जन्म आयु एवं भोगका निर्णायक होता है। उपसर्जन या गौण कर्माशय चित्तमें दबे रहते हैं। यदि उनके अभिव्यञ्जन मिलते हैं, तो प्रकट होकर अपना फल देते हैं। यदि पुण्यकर्म होते हैं, तो ये गौण कर्म नष्ट हो जाते हैं, इनका फल प्राप्त नहीं होता। इसी प्रकार यदि व्यक्ति पुण्यकर्म करता है, तो उसकी आयु बढ़ जाती है।

नन्दीश्वरको आठ ही वर्षकी आयु प्राप्त हुई थी। किन्तु उन्होंने उत्कट पुण्य-कर्मसे दीर्घ आयु प्राप्त की। इससे यह सिद्ध होता है कि पुण्य कर्माशय मृत्युके प्रतिबन्धक हैं यही कारण है कि दीर्घायु योगी अकृष्ण एवं अशुक्ल कर्म करके पुनर्जन्म प्राप्त नहीं करते। तपश्चरण आदि द्वारा वे अपने पूर्वकर्मोंका नाश कर देते हैं, इसलिए उनके कर्माशय बनते ही नहीं।

इससे यह सिद्ध होता है कि कर्माशय ही जीवन एवं मृत्युका कारण है। अतएव जो मुमुक्षु हैं; उन्हें अशुक्ल एवं अकृष्ण कर्म करने चाहिए।

●

सर्वव्यापक एवं दुःखमुक्त कौन होता है ?

जो तत्त्वका पूर्ण निश्चय करके ज्ञानरूप, निराधार और सम्पूर्ण प्राणियोंके भीतर रहनेवाले आत्माको जान लेता है वह सर्वव्यापक हो जाता है। जो विद्वान् संयोगको ही वियोगके रूपमें देखता है तथा नानात्वमें एकत्वका दर्शन करता है, वह दुःखसे सर्वथा मुक्त हो जाता है।

(अनुगीता)

श्रीरामेश्वर धाम

श्री कृष्णगोपाल माथुर

★

हमारे भारत-देशकी चार दिशाओंके चार धामोंमें श्री रामेश्वर दक्षिण दिशाका सर्वोत्तम तीर्थ है, जो एक समुद्री द्वीपमें स्थित है। यह रामेश्वर-द्वीप लगभग ११ मील लम्बा और ७ मील चौड़ा हैं।

श्रीरामेश्वर की गणना शिवके द्वादश ज्योतिर्लिङ्गोंमें होती है। भगवान् श्रीरामचन्द्रने इसकी स्थापना की थी, जहांसे वानरोंकी अपार सेनाको लंकामें ले जाया गया। लंका-विजयकर जब श्रीराम लौटे, तो विभीषणकी प्रार्थनापर उन्होंने अपने धनुषकी नोंकसे इसे तोड़ दिया, तभीसे यह 'धनुष्कोटि-तीर्थ' कहा जाता है। अनादि कालसे यह देवताओं, ऋषियों एवं महापुरुषोंकी श्रद्धाभूमि रहा है।

मन्दिर अनेक स्तम्भोंपर खड़ा है। इसके अन्दर २२ कूप-कुण्ड हैं, जिनका जल बहुत मीठा है, किन्तु मन्दिरके बाहर जो कुएं हैं, उनका जल खारा है। कहा जाता है कि भगवान् श्रीरामने अपने अमोघ बाणों द्वारा इनका निर्माण किया और इनमें विभिन्न तीर्थोंका जल लाकर डाला गया।

रामेश्वर धामके आस-पास राम-तीर्थ, अमृतवाटिका, हनुमान्-कुण्ड, ब्रह्महत्या-निवारक तीर्थ, विभीषण-तीर्थ, सीताकुण्ड, रामकुण्ड आदि हैं। उनपर यात्री लोग मुण्डन कराते, स्नान करते और पितृ-तर्पण करते हैं।

भगवान् रामेश्वरके मन्दिरसे सटा हनुमदीश्वर-मन्दिर है। यह पवनसुत हनुमान् द्वारा कैलाशसे लाया हुआ शिवलिंग है। इसकी एक कथा है। यात्रियोंके लिए नियम है कि पहले हनुमदीश्वरका दर्शन-पूजन करनेके पश्चात् रामेश्वरका दर्शन करना चाहिए।

भगवान् रामेश्वरपर कोई यात्री अपने हाथसे जल नहीं चढ़ा सकता। गंगोत्तरी या हरिद्वारसे लाया जल पुजारी द्वारा ही चढ़ाया जाता है, जिसका शुल्क देना पड़ता है। इसी प्रकार दुग्धाभिषेक कराने, श्रीफल चढ़ाने, त्रिशतार्चन कराने, अष्टोत्तरार्चन कराने, सहस्रार्चन कराने और नैवेद्य चढ़ानेके लिए भी अलग-अलग शुल्क निश्चित हैं, जो कार्यालयमें जमाकर रसीद लेनी पड़ती है।

श्री रामेश्वर और माता पार्वतीके धारण करनेके लिए बहुतसे चांदी-सोनेके रत्ना-भरण हैं, जो महोत्सवके समय काममें लाये जाते हैं। इनके दर्शनका शुल्क देना पड़ता है।

इसी भाँति जो यात्री श्रीरामेश्वर-पार्वतीका रथयात्रा-महोत्सव, पंचमूर्ति-उत्सव और रजत-रथोत्सव करना चाहें, उन्हें एक दिन पहले सूचना देकर भारी शुल्क जमा करना पड़ता है। मन्दिरके अन्दर ही ये सब उत्सव अपूर्व साज-सज्जा और चाँदी-सोनेके वाहनोंपर होते हैं। यह अद्भुत छटा देखते ही बनती है। उस समय जयजयकारकी ध्वनि गूँज उठती है।

श्रीरामेश्वरजीका एक सुन्दर स्फटिक-लिंग वहीं विराजमान है, जिसके दर्शन प्रातः काल ४॥ बजे होते हैं। यात्री लोग इनका दर्शन करके स्नान करने जाते हैं। इस मूर्तिपर दुग्धधारा चढ़ने और पूजा होनेके पश्चात् वह पंचामृत-प्रसाद यात्रियोंको वितरण किया जाता है।

श्रीरामेश्वर-मन्दिरके दक्षिणमें "पर्वतवर्धिनी" नामक श्रीपार्वतीका विशाल मन्दिर है। प्रातःकाल यहाँ मंगल-आरती होती है, और शयन-आरतीको 'कैलाश-दर्शन' कहते हैं। यहाँ श्रीरामेश्वरकी चलमूर्तिको लाकर पार्वतीके समीप पधराकर उनकी पूजा-आरती होती है।

श्रीरामेश्वर-मन्दिरमें यों तो बारहों मास कई उत्सव चलते रहते हैं, किन्तु कुछ विशेष उत्सव इस प्रकार होते हैं : महाशिवरात्रि, वैशाख-पूर्णिमा, ज्येष्ठ-पूर्णिमा, आषाढ़कृष्णा अष्टमीसे श्रावणशुक्ल विवाहोत्सव, नवरात्रोत्सव, स्कन्ध-जन्मोत्सव, आर्द्रा-दर्शनोत्सव, मकरसंक्रान्ति, वैकुण्ठ एकादशी, श्रीरामनवमी-महोत्सव। प्रत्येक प्रदोषके दिन श्रीरामेश्वरकी उत्सव-मूर्ति वृषभ-वाहनपर सवार करवाकर शोभायात्रा निकाली जाती है।

ऊपर जिस 'धनुष्कोटि-तीर्थ'की चर्चा आयी है, वह रामेश्वरसे दूर है, जहाँ हिन्द महासागर और बंगालकी खाड़ीका मिलन हुआ है। कहते हैं कि भगवान् श्रीरामचन्द्रने समुद्रपर क्रोधित होकर इसी जगह बाण चढ़ाया था। धनुष्कोटि एक बड़ा बन्दरगाह भी है, जहाँसे सीलोनतक जहाज आते-जाते हैं। अकेले इसी एक तीर्थके माहात्म्यमें स्कन्दपुराणके ३७,६५ और ६८ अध्यायोंमें यहाँतक कहा गया है कि यह तीर्थ सभी महापातकोंका नाशक और मनुष्यकी समस्त इच्छाओंका पूरक है।

श्रीरामेश्वर-मन्दिरके आस-पास कई देवी-देवताओंके अनेक मन्दिर विद्यमान हैं, जो स्थापत्य-कलाकी दृष्टिसे बड़े ही मनोहर और दर्शनीय हैं। ये सब भगवान् रामकी लंका-विजयसे सम्बद्ध हैं, जिनकी समय'समयपर जैसी जैसी आवश्यकता हुई, स्थापना की गयी। इनकी पूजा-अर्चनाकी विधि-विधान अलग-अलग है। धर्म-प्राण यात्री अटल विश्वास-भक्ति और तीर्थकी महिमाका महत्त्व हृदयमें धारण किये हुए वहाँ हजारोंकी संख्यामें आते हैं और मानवजीवनका महत्त्वपूर्ण फल प्राप्त करनेमें अपना परम सौभाग्य समझते हैं। पण्डोंके आडम्बरको छोड़कर शास्त्रविधिके अनुसार पूजा-अर्चना करनेसे ही फल मिलता है, जो विश्वासपूर्वक आस्थापर निर्भर है।

रामचरित-मानसमें श्रीराम द्वारा कहा गया है कि 'मेरे स्थापित किये हुए श्रीरामेश्वरके जो नर दर्शन करेगा, वह बिना श्रमके ही भवसागरसे पार हो जायगा। जो गंगाजल लाकर यहाँ चढ़ायेगा, वह मनुष्य सायुज्य-मुक्ति प्राप्त कर लेगा।'

इसके अतिरिक्त स्कन्दपुराणके ब्राह्मखण्डमें सेतुबन्ध-माहात्म्यका वर्णन १ अध्यायसे क्रमशः ४८ अध्यायोंतक विस्तृत रूपसे किया गया है। उसके पढ़नेसे भलीभाँति ज्ञात हो जाता है कि मानवतनुधारी जीवके उद्धार-हेतु यह माहात्म्य कितना बड़ा महत्त्व रखता है और उसके पाप-ताप, दोष दुःख दूर करनेके लिए कितना समर्थ है। किन्तु सर्वत्र विश्वासका ही विषय होती है।

यहाँतक कहा गया है कि 'सेतुके दर्शनमात्रसे मनुष्यके कायिक, वाचिक, मानसिक तीनों प्रकारके पाप नष्ट होकर वे उत्तम कर्मोंमें बदल जाते हैं; सभी कर्म सिद्ध हो जाते हैं, इसमें किसी प्रकारका कोई सन्देह नहीं। भूमिके रजःकण और विस्तृत आकाशके तारे गिने जा सकते हैं, किन्तु इस सेतु-दर्शनके पुण्यकी शेषनाग भी गणना नहीं कर सकते। जो सेतुकी बालुकामें शयन करता है, उसके शरीरमें बालूके जितने कण लग जाते हैं, उतनी ही उसकी ब्रह्महत्याओंका अनायास नाश हो जाता है, इसमें तनिक भी सन्देहकी गुञ्जाइश नहीं है।

दक्षिण भारतकी यात्रामें श्रीरामेश्वरकी यात्राका महत्त्व मुख्य है। यहाँके पण्डे देशके दूर-दूरके नगरोंमें पहुँचकर यात्रियोंको ले जाते हैं। यात्रीको इनके यहाँ ठहरनेमें सुविधा होती है।

यों तो भारत अखण्ड है। इसमें जहाँ-जहाँ जो भी तीर्थस्थान हैं—चारों धाम और सप्त पुरियाँ हैं, सभीमें धर्मप्राण जनताका अटूट विश्वास और अत्यन्त प्रेम है। इन तीर्थोंका दर्शन-सेवन करना मनुष्यके पापराशिको जलानेके लिए अग्निका काम करता है। अतः ये सदैव सेव्य हैं।

शिवकी स्तुति

तव रूपं न जानामि कीदृशोऽसि महेश्वर।
यादृशोऽसि महादेव तादृशाय नमो नमः॥

महेश्वर! आपका रूप कैसा है? यह मैं नहीं जानता। महादेव! आप जैसे हैं, उसी रूपमें आपको मेरा नमस्कार है।

पुराण-चर्चा

हरि-भक्त कौन ?

सन्तकुमार टण्डन 'रसिक'

☆

ईश्वरकी भक्ति कौन कर सकता है या ईश्वरके भक्तके क्या लक्षण हैं, इसपर विष्णु-पुराणमें भली प्रकार प्रकाश डाला गया है।

ईश्वरका सच्चा भक्त वही है या ईश्वर की सच्ची भक्ति वही कर सकता है—

१. जो अपने वर्ण के धर्मों से चलायमान न हो।

२. जो मित्र और शत्रु को समान समझे।

३. जो किसी की वस्तु लेनेकी इच्छा न करे।

४. जो किसी जीव को न सताये और हिंसा न करे।

५. जो शुद्धमति हो और बुरे प्रभावोंसे दूर रहे।

६. जो संसारी मोहमें न फँसे।

७. जो सदा मन में हरि-भजन करे।

८. जो एकान्त में भी दूसरे का धन पड़ा देखकर न ले और उसे मिट्टी जाने।

९. जो भगवान्‌को छोड़कर और किसी वस्तुमें मन न लगाये।

१०. जो अहंकार-हीन, शान्तचित्त, पवित्र-चरित्र, सबका मित्र, प्रियंवद, मान-हीन और छल-रहित हो।

११. जो साधु-जनों और महात्माओंका अधिकार मानता है, उनका आदर करता है और भगवान्‌के भक्तोंकी निन्दा नहीं करता।

जो इन नियमोंका पालन करता है वह ईश्वरकी भक्तिका अधिकारी होता है। वह सब सुख पाता है। ईश्वर उसे मुक्ति देता है। ईश्वर उसपर प्रसन्न रहते हैं और वह ईश्वरको प्राप्त करता है।

●

नीति-वचनामृत

दुर्जनदूषितमनसः सुजनेष्वपि नास्ति विश्वासः।
बालः पायसदग्धो दध्यपि फूत्कृत्य भक्षयति॥

दुर्जन-संकित सुजनपर करि विश्वास न पाय।
जर्‍यौ खीर ते सिसु दही फूँक-फूँक कर खाय॥

खलः करोति दुर्वृत्तं नूनं फलति साधुषु।
दशाननोऽहरत् सीतां बन्धनं स्यान्महोदधेः॥

फल भोगत हैं साधु जन दुष्ट करत अपराध।
दसमुखने सीता हरी बँध्यो समुद्र अगाध॥

स्पृशन्नपि गजो हन्ति जिघ्रन्नपि भुजङ्गमः।
पालयन्नपि भूपालः प्रहसन्नपि दुर्जनः॥

परसत हू मारत करी सूँघत हू अहिराज।
पालत हू मारत नृपति हँसतहु दुष्ट-समाज॥

•

सूक्ति-सुधा

सरसि बहुशस्ताराच्छाये क्षणात् परिवञ्चितः
कुमुदविटपान्वेषी हंसो निशास्वविचक्षणः।
विसृजति पुनस्ताराशङ्की दिवाऽपि सितोत्पलं
कुहकचकितो लोकः सत्येऽप्यपायमपेक्षते ॥

तारन हजारनकी छाया ते लसित सर
जामें जलरासि भरो उज्ज्वल अपंका है,
आयो निसाकाल तहाँ खोजत कुमुदनाल
छनमें ठगो-सो भयो राजहंस रंका है।
दिनहूमें त्यागि दियो धवल सरोजनको
तारनकी संका उर धारिके अतंका है,
भ्रम, छलना त्यों माया-जाल ते चकित लोक
साँचहूमें करत असाँच ही की संका है ॥

श्रीकृष्ण-जन्मस्थान-सेवासंघ मथुराके लिए देवधरशर्मा द्वारा आनन्दकानन प्रेस, दुण्डिराज, वाराणसी—१ में मुद्रित एवं प्रकाशित